केरल ज्योति

नवंबर 2023

ISSN 2320-9976
UGC Care - List

केरल हिंदी प्रचार सभा
तिरुवनंतपुरम

ISO 9001: 2015

हिंदी नवीनीकरण पाठ्यक्रम का उद्घाटन
श्री. शशी तरूर एम.पी.कर रहे हैं।

केरल के हिंदी प्रचार में सभा का योगदान शीर्षक संगोष्ठी का उद्घाटन
एम.जी.कॉलेज में प्राचार्य डॉ.बीना एस. उद्घाटन कर रही हैं।

पालक्काट शाखा कार्यालय का उद्घाटन
श्री. वी.के.श्रीकण्ठन एम.पी. दीप प्रज्वलन कर रहे हैं।

पुष्प : 60 दल : 8 अंकः **नवंबर 2023**

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

पूर्व समीक्षा समिति

प्रो.(डॉ). एन.रवींद्रनाथ
डॉ. के.एम. मालती
प्रो.(डॉ.) आर. जयचन्द्रन
प्रो.(डॉ). जयश्री.एस.आर

परामर्श मंडल

डॉ.तंकमणि अम्मा एस
डॉ.लता पी
डॉ. रामचन्द्रन नायर जे

प्रबन्ध संपादक

गोपकुमार एस (अध्यक्ष)

मुख्य संपादक

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

संपादक

डॉ. रंजीत रविशैलम

संपादकीय मंडल

सदानन्दन जी
मुरलीधरन.पी.पी.
प्रो.रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

बकरी कौन चराएगा (पुस्तक समीक्षा) - **गोपकुमार एस** 6

स्त्री की जागृति की गाथा-शेषयात्रा - **डॉ.शैलजा.के** 8

जिंदगी 50 50 में तृतीय लिंगी विमर्श - **डॉ.नीरजा.वी.एस** 11

'उधार' में प्रकृति की उदारता - **डॉ. उषा कुमारी.जे.बी.** 14

अभिशप्तता से आत्मविश्वास की ओर
(सुशीला टाकभौरे की रचनाओं की ओर से एक यात्रा)
डॉ. पूर्णिमा.आर 16

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यास में वृद्ध जीवन : 'गिलिगडु' और 'दौड' के विशेष संदर्भ में - **सुरभि.एस.** 20

विस्थापन की त्रासदी : 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान'
हिमा.एम.एन. 24

नारी विद्रोह एवं स्त्री चेतना - 'कठगुलाब' के संदर्भ में
डॉ. प्रिया रानी.पी.एस 28

'गोल गोल घूमती एक नाँव'में परिवेश अंकन
डॉ. लालीमोल वर्गीस.पी 30

संतमत एवं शांति का मार्ग - **डॉ. प्रिय रंजन** 32

नदी का नसीब (पुस्तक समीक्षा) **आनंदकुमार. आर.एल.** 35

हिंदी सूफ़ी काव्य में समरसता - **डॉ.सुजित.एन.तंपी** 36

तीसरा आदमी उपन्यास में स्त्री का मनोवैज्ञानिक पक्ष - **गीतु दास** 39

नवजागरण के विशेष संदर्भ में चण्डाल भिक्षुकी और दुरवस्था -
एक विश्लेषण - **डॉ.बिंदु.एम.जी.** 42

मोहन राकेश के नाटक में आधुनिकता बोध - **डॉ.अदिति सैकिया** 46

दलित विमर्श : 'घासवाली' नाट्यरूपांतर के विशेष संदर्भ में
- **वीणा.एस.कुमार** 49

कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यासों में नारी संकल्पना-**डॉ.श्रीकला.एस.आर** 51

देवयानम् (आत्मकथा)
मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना 53

मुखचित्र : बिना चुनाव प्रक्रिया के चुने गये नव-निर्वाचित केरल हिन्दी प्रचार सभा के मंत्री डॉ.मधु बी.

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 25/- आजीवन चंदा : रु. 2500/- वार्षिक चंदा : रु. 250/-

A /c No. 57022786007 IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : मुख्य संपादक : 9995680289 संपादक : 7898515222
E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.com

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
नवंबर 2023

संपादकीय

केरल हिंदी प्रचार सभा के नये नेतृत्व को हार्दिक अभिवादन!

केरल हिंदी प्रचार सभा के समयावधि वर्ष 2023-2028 के लिए हाल ही में हुए कार्यकारिणी समिति चुनाव में पूर्व कार्यकारिणी समिति के सदस्यों को बिना चुनाव प्रक्रिया के चुना गया। पिछले तीन दशाब्द के अंतराल में इस प्रकार बिना प्रतियोगिता के चुने जाने का यह प्रथम अवसर है। सभा के अध्यक्ष एस. गोपकुमार, मंत्री डॉ बी. मधु, कोषाध्यक्ष श्री जी. सदानंदन, उपाध्यक्ष द्वय श्री आर.षाजी एवं एस. मोहनकुमारी और अन्य 16 समिति-सदस्यों को चुना गया। 6 नवंबर 2018 को कार्यभार संभालने के पाँच साल के बाद फिर से नए चुनाव में बिना प्रतियोगिता के चुना जाना कार्यकारिणी समति की समर्पित हिंदी सेवा, कर्मठता, प्रतिबद्धता और ईमानदारी का ज्वलंत परिचय है। पिछली कार्यकारिणी समिति को अपने कार्यकाल में अनेक समस्याओं और चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मंद गति से चलती सभा के शाखा कार्यालयों को कार्यकारिणी समिति ने आवश्यक सहायता एवं उत्तेजना देकर नई स्फूर्ति प्रदान की।

कोविड-काल के बीतने के बाद सभा ने कई संगोष्ठियों का आयोजन किया जिनमें उत्तर भारत के प्रतिष्ठित प्रमुख साहित्यकारों ने भाग लिया। इसके अलावा सभा के नेतृत्व में केरल के सारे कॉलेजों और स्कूल की भागीदारी में संगोष्ठियों तथा विविध विषयों पर प्रतियोगीताओ का आयोजन सफलतापूर्वक किया गया। हाल ही में सभा में आयोजित ज्ञानपर्व नाम से पुस्तक प्रदर्शिनी ने हज़ारों हिंदी प्रेमियों को, अनेकों छात्रों को, हिंदी प्रचारकों और स्कूलों तथा कॉलेजों के हिंदी शिक्षकों की ज्ञावृद्धि की सहायता प्रदान करने के साथ-साथ हिंदी प्रचार व प्रसार में उनका उत्साह भी बढ़ाया। इन सारी उपलब्धियों का श्रेय कार्यकारिणी समिति को है और सफल नेतृत्व देनेवाले कुशल मंत्री डॉ. मधु.बी, प्रगल्भ अध्यक्ष एस. गोपकुमार तथा कार्यकारिणी समिति के सभी सदस्यों को है। सबको केरल ज्योति परिवार का दिली अभिनंदन!

प्रो.डी.तंकप्पन नायर
डॉ.रंजीत रविशैलम

पुस्तक समीक्षा

बकरी कौन चराएगा

गोपकुमार एस

'बकरी कौन चराएगा' यशस्वी कवि मोहन द्विवेदी द्वारा लिखित नवीनतम काव्य संग्रह है। पिछले एक दो साल से मुझे उनका परिचय मिला है और हम दोनों में इसी बीच गाढ मैत्री हुई है। उनके आग्रह पर प्रस्तुत कृति की लघु समीक्षा प्रस्तुत करता हूँ। केरल हिंदी प्रचार सभा के अध्यक्ष के नाते उनके साथ हाल ही में मेरा अच्छा खासा संबंध स्थापित हुआ। एतदर्थ आपकी कृति के लिए समीक्षा लिखना मेरे लिए हर्ष और गौरव की बात हुई। इसका कारण यह भी है कि 'बकरी कौन चराएगा' का प्राक्कथन केरल ज्योति के मुख्य संपादक प्रो.डी. तंकप्पन नायर ने लिखा है और केरल हिंदी प्रचार सभा के मंत्री और मेरे मित्रवर अधिवक्ता मधु.बी. ने कृति की मंगलकामनाएँ भी की हैं। जैसे कवि ने अपने आत्मकथ्य में कहा है, उन्होंने अपने आस-पास के परिवेश को काव्य का विषय बनाया है।

'बकरी कौन चराएगा' में 51 कविताएँ संकलित हैं। हिंदी के जाने माने समीक्षक सुभाष चंदर के मत में मोहन द्विवेदी उन विरले रचनाकारों में से एक है, उन्होंने मंच और प्रकाशन दोनों ही क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा से प्रभावित किया है। उन्होंने भारतीय परिवेश में व्याप्त जातिवादी मानसिकता के मर्मस्थल पर तीखा प्रहार किया है। एक उदाहरण : "ललुआ इंटर पास हो गया, पूरा गाँव उदास हो गया,/बकरी कौन चरायेगा?/जूठन को तरसा करता था, भूखे दम निकला करता था,/बासी भात कहीं मिलता तो, पानी से निगला करता था।/लोकतंत्र वरदान हो गया, शासन में सम्मान हो गया,/ तड़प रहा था जो खूँटे में, वह भैंसा बलवान हो गया।/बिल में था जो रामभरोसे, वह अब रामविलास हो गया,/ गोबर कौन उठाएगा?"

- ललुआ इंटर पास हो गया

संकलन की सारी-की-सारी कविताएँ व्यंग्यपरक हैं। उनमें भारतीय समाज की वर्तमान हीन अवस्था, गरीबों की लाचारी, बेचारे भुखमरे ग्रामीणों का जीवन, गाँवों में सर्वव्यापी गरीबी और उसके कारण होनेवाली समाज की जीर्णावस्था का सही झाँकी मिलती है। प्रत्येक कविता इस कथन का साक्ष्य करती है। 'बकरी कौन चराएगा' में हमारे समय में नित्य प्रति के जीवन और देश-काल का महत्वपूर्ण और चिंतनीय प्रश्न उठाया गया है। उन्होंने अन्य कविताओं में भी कल्पना की उड़ान को छोड़कर जीवन के ठोस धरातल पर खड़े होकर बदलती हुई सामाजिक स्थितियों पर प्रकाश डाला है। जब ललुआ इण्टर पास हो गया तो पूरा गाँव उदास हो गया क्योंकि पूरे गाँववालों की समस्या यह है कि उनकी बकरी कौन चराएगा। सब इस बात पर नाराज़ है कि लोकतंत्र लाचारों के लिए वरदान हो गया है! शासन में भी पिछड़े लोगों को सम्मान मिल गया है। इसलिए हमारा गोबर कौन उठाएगा। ज़मींदार लाचार हो गया; कुंठित और निराश हो गया। इसीलिए कि अब मेरा हुक्का कौन चढ़ाएगा? यह भी गाँव के धनिक समाज के लिए चिंता का विषय हो गया कि इन लाचारों का वेष श्वेत वेष हो गया।

संकलन की कविता 'भ्रष्टाचार ज़रूरी है' में कवि की दृष्टि में भ्रष्टाचार तो आज के ज़माने की जीवन की शैली बन गई है और जनता के मन में 'राम राज' का जो सपना था वह सपना होकर ही रह गया है। इसलिए कवि को ऐसा कहने के लिए विवश होना पड़ता है कि छोड़ो भ्रष्टाचार की बात। कवि भी यह समझने लगा है कि भ्रष्टाचार ज़रूरी है। चुनाव पर भी कवि व्यंग्य करता है कि चुनाव के समय में नेता लोग जनता के सामने सत्ता के दरवाज़े पर पहुँचा देने के लिए, वोट माँगने के लिए प्रत्यक्ष होते है और बड़े बड़े वादे परोसते हैं और उनके दिल में नापाक इरादे होते हैं। सपनों के वादे जैसे हैं। इस तरह चुनाव लड़ते हैं किंतु उनके वादे बिलकुल झूठे होते हैं। कवि ने सशक्त वाणी में परोक्ष रूप में वर्तमान भारतीय नेताओं पर तीखा व्यंग्य किया है :

जनता को सपनों के वादे, दिल में हैं नापाक इरादे,/
घूम रहे हैं खोल ओढ़कर, लगते कितने सीधे-सादे।/बाँट रहे खैरात मंच से, भोजन-वस्त्र-मकान जबानी।/

हर चुनाव की यही कहानी।।/बाँधे हैं आँखों पर पट्टा, झोंक रहे भट्ठी में भट्ठा,/रंगे हाथ कल ही पकड़ाये, फिर भी मार रहे हैं ठट्ठा।/कच्चा-पक्का निगल लिये सब, थाह पेट की किसने जानी।/हर चुनाव की यही कहानी।।

आजकल समाज में कवियों की वर्तमान दयनीय अवस्था पर भी मोहन द्विवेदी ने प्रकाश डाला है। कवियों को समाज में जो उचित सम्मान मिलना है, वह नहीं मिल रहा है। फिर भी कवि चिंतित या निराश नहीं है क्योंकि दूसरों का परिहास और तिरस्कार सहते हुए भी अपनी वाणी बुलंद करता है कि -

टूट नहीं सकता हूँ मैं इन, दुष्टों की दुत्कारों से,/इतना विवश नहीं मैं कर लूँ, समझौता गद्दारों स/

चन्द पाप के घट सम हैं ये, छलक उठेंगे कुछ पल में,/ हरी घास की चाह लिए ये धँस जायेंगे दलदल में।/ अपहरणों के धंधों को क्या, चाँदी का व्यापार लिखूँ?/ निष्ठा और ईमान त्यागकर कैसे भ्रष्टाचार लिखूँ?

****

मीरा-तुलसी का वंशज मैं, सूर-कबीरा की थाती,/ गीता-गौतम का अनुयायी, वीर शिवा की हूँ छाती।/ निर्विकार हूँ सरस्वती का, वरद पुत्र कहलाता हूँ,/सत्यम, शिवम, सुंदरम् का मैं, गान हमेशा गाता हूँ।/सृजन जिया हूँ जीऊँगा मैं, क्यों बदलूँ संहार लिखूँ?/जीवन है परहित अर्पित तो, वह गाया सौ बार लिखूँ।

'पीढ़ी तुमको धिक्कारेगी', 'सो गई संवेदना', 'वोट की रेलगाड़ी', 'लोकतंत्र है झोला में' आदि कविताओं के ज़रिए जहाँ एक ओर कवि की सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय मिलता है वहाँ दूसरी ओर समाज की जीर्ण अवस्था को दूर करने की कवि की सतर्कता का उज्ज्वल परिचय भी मिलता है। समाज के अन्यायों, अत्याचारों और विसंगतियों के प्रति कवि का आक्रोश इन सारी-की-सारी कविताओं में मुखरित होता है और साथ-ही-साथ कवि के क्रांतिकारी दृष्टिकोण की भी झलक मिलती है।

अब 'हिंदी' सरकार द्वारा राजभाषा घोषित हुई है और राजभाषा के प्रचार व प्रसार के लिए जल से होते हैं और सम्मेलन भी होते हैं। इनमें जो ढोंग व दिखावा है उसका सही चित्रण 'हिंदी पखवारा' शीर्षक कविता में मिलता है :

भारतेंदु,मीरा, कबीर की, तुलसी की स्थापित है,
शुक्ल, द्विवेदी, पंत, निराला, मुंशी की संपादित है।
वैसे तो हिंदी पखवारा, त्योहारों सा आता है,
खा-पीकर, कुछ उछल-कूद, सरकारी हाथ हिलाता है।
फंड मिला तो आनन-फानन, हिंदी दिवस मनाता है,
अग्रहार थोड़ा हिंदी का, कवियों को मिल जाता है।
हिंदी पखवारा पित्रपक्ष में, अपना रंग दिखाता है,
हाथ पसारे आता है और, मुट्ठी बाँधे जाता है।

फिर भी कवि निराश नहीं है क्योंकि :

हिंदी तो हिंदुस्तानी की, अपना गौरव अपनी शान,
आओ बोलें, पढ़ें-पढायें, कर लें हिंदी पर अभियान।
आने वाली पीढ़ी को दे, हम हिंदी का सम्यक ज्ञान,
अपनी मिट्टी अपनी भाषा, इसका वंदन इसका यान।

डॉ. रंजीत रविशैलम ने मोहन द्विवेदी के साहित्य का ठीक-ठीक अवलोकन किया है कि वे अपनी कविता में अपने मन के अनुरूप भाव ढूँढते हैं अर्थात् व्यंग्य में वात्सल्य, प्रेम, करुणा, आक्रोश, घृणा, श्रृंगार, सबका सान्निध्य ढूँढते हैं। अर्थात् कविवर द्विवेदी जी सामान्य जनता के विचारों को वरीयता देने वाले सामान्य जीवन बिताने वाले असामान्य एवं उल्कृष्ट कवि हैं।

आलोच्य काव्य संकलन की कविताओं में जिस ग्रामीण परिवेश का अंकन हुआ है, वह किसी-न-किसी रूप में संपूर्ण भारतीय परिवेश है। इस कारण ये संपूर्ण कविताएँ अन्य भाषाओं में भी रूपांतरित होकर प्रकाशित होने के लिए सर्वथा सुयोग्य है। कवि की भावनाएँ दलित, पीड़ित और सर्वहारा वर्ग के प्रति है। उनके मन में उदात्त राष्ट्र की मधुर संकल्पना है जिसका परोक्ष संकेत हर कविता देती है यद्यपि व्यंग्य के आवरण में अभिव्यक्त हुई है। यह निसंदेह कहा जा सकता है कि 'बकरी कौन चराएगा' भारतीय व्यंग्य को मोहन द्विवेदी जी की अपूर्व देन है।

अध्यक्ष
केरल हिंदी प्रचार सभा
तिरुवनंतपुरम - 14
मोबाइल : 9447240901

स्त्री की जागृति की गाथा-शेषयात्रा

डॉ.शैलजा.के

आज हिन्दी उपन्यास विकास के अनेक सोपानों को पार करके आधुनिक काल में पहुँच गया है। अनेक परिवेशों को अपनाती हुई, कई ऊबड रास्तों को पार करती हुई, नयी राहों को खोजती हुई उसकी विकास यात्रा में अनेक मोड आये हैं। एक मोड़ पर नारी जीवन की सीमाओं, समस्याओं एवं सच्चाइयों का जीता जागता चित्रण करते हुए महिला उपन्यासकारों की शृंखला खड़ी है।उनमें श्रीमती उषा प्रियंवदा का स्थान उल्लेखनीय है, जिन्होंने नारी जीवनकी समस्त गतिविधियों को अपनी रचनाओं में शब्दबद्ध किया है।

उषाजी की चार औपन्यासिक कृतियाँ हैं- पचपन खम्भे लाल दीवारें , रुकोगी नहीं राधिका , शेष यात्रा और अन्तर्वंशी । पारिवारिक, सामाजिक परिस्थितियों के झंझावात से उखडनेवाली नारी को 'पचपन खम्भे लाल दीवारें की कथा का केन्द्रबिंदु बनाया गया है। 'रुकोगी नहीं राधिका' में अस्मिता की तलाश करनेवाली नारी की दुविधा को अंकित किया गया है। अन्तर्वंशी में अमेरिकावासी भारतीय परिवारों की जिंदगी को उनके आपसी संबंधों एवं संघर्षों को गहरी अंतर्दृष्टि से उद्घाटित किया गया है । 1984 में प्रकाशित 'शेष यात्रा' में लेखिका ने सदियों से चलनेवाली नारी समस्याओं को अनावृत किया है । साथ-साथ वह भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृति की टकराहट में जीवन बितानेवाले प्रवासी भारतीयों की कथा भी है।

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा उस नारी का रूप है जो परिवार के उत्तरदायित्वों के बीच 'स्व' का हनन करती है । अपने आपको घेरे हुए सामाजिक एवं पारिवारिक उत्तरदायित्वों की बेडियों को तोड देने में वह असमर्थ रह जाती है। परिस्थितियों से प्रताडित, विवाह-सुख से वंचित औरत के अंतर्द्वंद का चित्रण इस उपन्यास का लक्ष्य है। एक भिन्न रूप में उषा प्रियंवदा की यही नारी अपनी अस्मिता को तलाशती हुई उनके दूसरे उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिका' में जी उठती है। प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा लेखिका ने अधुनिक व्यक्ति के स्वत्व की तलाश को व्यक्तकिया है। राधिका इस आधुनिकता बोध की उजागर करती है। उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में नारी जीवन का एक और पक्ष उद्घाटित हुआ है। भारतीय नारी के पश्चिमी सभ्यता व संकृति के प्रभाव में आने के कारण जो वैचारिक स्पांतरण हुआ है। उसकी ओर मेरा संकेत है। इसका उदाहरण है 'शेष यात्रा' उपन्यास की नायिका अनुका। वास्तव में अनुका उषाजी के अन्य दो उपन्यासों की नारी पात्रों का ही विकसित रूप है, जो सारे विषम परिस्थितियों को जीतकर अपना अलग अस्तित्व स्थापित करती है। संघर्ष और साहस द्वारा अपनी नियति बदलने में वह सफल हो जाती है।

एक सौ इकतीस पृष्ठों में अंकित 'शेष यात्रा' उपन्यास एक ऐसी पतिपरित्यक्ता नारी की कथा है जो तलाक के बाद अपने विश्वास, लगन एवं परिश्रम से अपने व्यक्तित्व का सृजन करती है और अर्थपूर्ण जीवन विताती है। उपन्यास की नायिका अनुका एक अनाथ लडकी है। वह लखनउ में अपने ननिहाल में रहती थी। एक ऐसे परिवार में रहती थी जहाँ घर की स्त्रियाँ त्योहार या शादी पर ही बाहर निकलती थीं। बी.एस-सी. करते वक्त बहुत छोटी उम्र में अनु की शादी प्रणव कुमार से हो जाती है जो अमेरिका में डाक्टर है। शादी के बाद वह पति के साथ अमेरिका चली जाती है। उसका पति प्रणव पाश्चात्य संस्कृति की उपज है जो सारी सुख-सुविधाओं एवं ऐयारी के सारे साधनों के बीच

हमेशा अव्वल नम्बर रहना चाहता है। अनु भी वहाँ जाकर पति की इच्छा के अनुसार सारी सुविधाओं से युक्त जीवन बिताती है। उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है, जो कुछ है, वह सब श्रीमती कुमार की हैसियत से है। इस सुखी जीवन के बीच भी अनु अकेलेपन से ऊब जाती है। उसके मन में माँ बनने की अदम्य इच्छा है। लेकिन प्रणव उससे सहमत नहीं होता। बच्चों का विचार ही प्रणव को बोर कर देता है। उसके अनुसार पहले मस्ती करना चाहिए, बाद में बच्चे। अनु का मन बहलाने के लिए प्रणव उसे एक महँगी स्पोर्ट्स कार खरीदकर देता है।

एक दिन प्रणव की मुलाकात चन्द्रिका राणा नामक लड़की से होती है जो प्रवासी भारतीयों पर डॉक्युमेंटरी बना रही है। प्रणव उसके मोहजाल में फँस जाता है और डॉक्टरी छोडकर उसके साथ फिल्में बनाने के लिए कालिफोर्णिया चला जाता है। बाद में ज्योत्सना बेन से अनु को सारी बातों का पता चलता है। वह कहती है कि प्रणव कालिफोरिया में चन्द्रिका के साथ रहता है और उससे शादी करने की इच्छा रखता है। साथ-साथ यह प्रणव के सारे अनैतिक संबन्धों के बारे में भी अनु को बता देती है। सब जानकर अनु मानसिक रूप से असन्तुलित हो जाती है और उसका मेंटल हॉस्पिटल में दाखिला किया जाता है। प्रणव यहाँ उससे मिलने आता है। अनु उससे गृहस्थी की भीख माँगती है। फिर भी वह उसे तलाक देता है।

अस्पताल से निकलकर अनु कॉलेज की अपनी सहेली दिव्या के पास चली जाती है जो अब जयंत से शादी करके अमेरिका में रिसर्च करने आई है। दिव्या की प्रेरणा से तलाक के वक्त मिले पैसे से अनु आगे पढ़ती है। पढ़ लिख कर बहुत व्यावहारिक बन जाती है। वहाँ के पासपोर्ट लेकर अमेरिकन बन जाती है। बाद में वह दिव्या का भाई दीपांकर से शादी कर लेती है जो पहले से ही उसे प्यार करता था। वह भी अमेरिका में डॉक्टर है। उनकी एक बच्ची हो जाती है। अनु बॉस्टन में एक अस्पताल में डॉक्टर के रूप में काम भी करने लगती है।

तलाक के दस साल बाद, दिल के दौरे और दो बाईपास आपरेशन के बाद प्रणव के मन में अनु को देखने की इच्छा होती है। इन दस सालों ने अनु के साथ कैसा खेल खेला है, यह जानना चाहता है। अनु का पता लगाकर उससे मिलने के लिए छाती की टेस्ट कराने के वास्ते वह बॉस्टन आता है। जिस अस्पताल में वह आता है अनु भी वहीं डॉक्टर है। अनु यहाँ प्रणव से मिलने आती है। अपने सामने एकदम बदली हुई अनु को देखकर प्रणव आश्चर्यचकित हो जाता है। आज यह उसके समान डॉक्टर बन गयी है, बराबरी से शराब पीती है। प्रणव मानता है कि इन दस सालों ने अनु के साथ न्याय किया है, उसे निखारा है, तोडा नहीं। उसकी जिन्दगी अब भरी-पूरी हो गई है।कैरियर, बच्चा, पति सब कुछ हैं। दूसरी ओर प्रणब एकदम अकेला हो गया है। लेकिन वह अपने पिछले दस सालों का लेखा-जोखा अनु को नहीं दे पाता।प्रणव को प्रसन्नता होती है कि उससे बिछुडकर अनु की ज़िन्दगी अच्छी एवं अर्थपूर्ण हो गई। फिर भी यह पता है कि उसके अन्दर का पति-भाव कहीं चोट खा रहा है। यही स्थिति अनु पर भी बीतती है। अन्त में दोनों एक दूसरे से कतराकर चले जाते हैं, यह जानते हुए कि अब अपनी अपनी दुनिया में रहना ही ठीक है।

संक्षेप में उषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यासों के द्वारा आधुनिक परिवर्तित सन्दर्भों में आधुनिक दांपत्य जीवन में पलती नारी की मनस्थिति का जीवंत चित्रण ही प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाएँ नारी के टूटने बनने की बहुमुखी गाथा है। वे स्त्री-पुरुष संबंध के अनेक बदलते दृष्टिकोणों को स्पष्ट करती हैं।'शेष-यात्रा' उपन्यास के द्वारा पति से बिछुडकर अपने स्वतंत्र अस्तित्व की घोषणा करनेवाली उस नारी का चित्र हमारे नज़रों के सामने आ जाता है जो हर हालत में विवेक का तरफदार है।

पुरानी सामाजिक व्यवस्था के टूटने एवं नई सामाजिक व्यवस्था के जन्म लेने के इस संधिकाल के दांपत्य जीवन में आज नैतिक बन्धनों की कोई मान्यता नहीं है। आधुनिक समाज में ऐसे पुरुषों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है जो अपनी पत्नी के अलावा अन्य स्त्रियों के साथ अनैतिक संबंध रखते हैं।लेखिका ने ऐसे लोगों के मुखौटों को उतारकर उनका सही स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उपन्यास का नायक प्रणव ऐसे पुरुषों का प्रतिनिधि है।

आज की भारतीय नारी, जीवन में सुरक्षा चाहती है, अपनी तमाम आधुनिकता के बावजूद नारी एवं पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं। इसलिए नारी स्वभावतः पुरुष के प्रति समर्पित होना चाहती है। फिर भी उसके जीवन में माँ के लिए कोई स्थान नहीं है। मानवता, उदारता, समदृष्टि, स्नेहशीलता आदि गुणों से युक्त सात्विक मनोवृत्तिवाले पुरुष को ही वह चाहती है। इसलिए ही दीपांकर जैसे पुरुष के प्रति अनजाने ही अनु के मन में प्यार पैदा होता है।

उपन्यास में प्रवासी भारतीयों का जो चित्रण किया गया है वह काफी प्रभावात्मक है। भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृति की टकराहट में पथभ्रष्ट होकर यंत्रवत् जीवन बितानेवाले लोगों के चित्रण करने में लेखिका को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। उपन्यास में ऐसे पति-पत्नी बहुत विरले ही देखने को मिलते हैं जो एक पति अथवा एक पत्नी से संतुष्ट हों।

पूरा उपन्यास पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध दो भागों में विभाजित है। पूवार्ध में अनु के प्रणव से तलाक तक की बातें अंकित की गई हैं। अनु का सारा अस्तित्व प्रणव पर टिका हुआ था। उत्तरार्ध में शिक्षा प्राप्त करके अपनी अस्मिता को बनाए रखते हुए अर्थपूर्ण जीवन बितानेवाली अनुका की कथा है। प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा यह व्यक्त करना ही लेखिका का उद्देश्य है कि पुरुष के बिना नारी का अर्थ-पूर्ण जीवन असंभव नहीं है।

पात्रों की मानसिक स्थिति को व्यक्तकरने के लिए एवं कथा को रोचक बनाने के लिए उपन्यास में चेतना प्रवाह शैली, वर्णनात्मक शैली एवं मनोविश्लेषणात्मक शैली का भी प्रयोग किया गया है। शब्दाडंबर रहित सहज बोलचाल की भाषा के प्रयोग की वजह से कहीं भी कोई कृत्रिमता दिखाई नहीं देती। बिंब एवं प्रतीकों के प्रयोग के द्वारा भाषा-सौन्दर्य द्विगुणित हो गया है। और 'शेष यात्रा' शीर्षक ही प्रतीकात्मक है। इस शीर्षक के द्वारा लेखिका अनु के जीवन में विशेषकर तलाक के बाद आए परिवर्तन की ओर संकेत करती है क्योंकि तलाक के बाद ही उसका अलग व्यक्तित्व उभर आता है। संक्षेप में आधुनिक पारिवारिक जीवन की असंगतियों के साथ नारी की अदम्य जिजीविषा को भी जाहिर करनेवाला सफल उपन्यास है शेषयात्रा।

असोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग, महाराजास कॉलेज, एर्नाकुलम

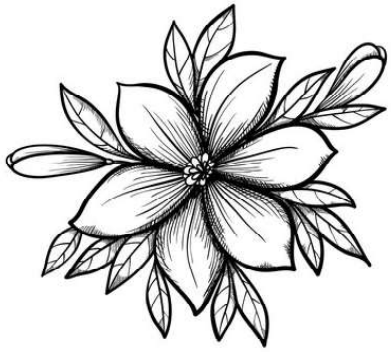

जिंदगी 50 50 में तृतीय लिंगी विमर्श

डॉ.नीरजा.वी.एस

वर्तमान साहित्य व्यक्तिको महत्व देने के कारण समाज के हाशिए कृत एवं उपेक्षित वर्गों को विमर्श के केंद्र में आने का मौका मिला है।वर्तमान साहित्य तिरस्कृतों की अस्मिता की तलाश का साहित्य है। यह तिरस्कृतों या अधिकारों से वंचितों को समाज की मुख्यधारा में शामिल करने में प्रयत्नशील है। इस प्रयत्न के कारण हिंदी साहित्य में लंबे समय से विमर्शों का एक गंभीर चिंतन दिखाई देता है।विमर्श साहित्य के सौंदर्य और दोषों का मूल्यांकन करने के साथ उसकी कमियों एवं खूबियों को भी पहचानता है।अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही हाशियेकृत जनता के लिए आवाज़ उठाने का काम साहित्यिक विमर्श कर रहा है। समाज में नारी, दलित, आदिवासी, मुस्लिम एवं तृतीय लिंगी विभाग के लोग सदियों से स्वाभिमान से जीने का संघर्ष कर रहे हैं। इनके प्रयत्नों को वाणी देने का काम साहित्य कर रहा है। साहित्यकार समाज की खोखली मान्यताओं पर आवाज उठाने का काम अपना कर्तव्य समझकर ईमानदारी से करने के कारण हाशिएकृत लोग समाज में बहुत आगे बढ चुके हैं।इस वर्ग के लोगों में हिम्मत बढ़ाने में साहित्यकारों की अहम भूमिका है।

हर इंसान अधूरा होता है। यह अधूरापन पूर्ण बनने के लिए आदमी को प्रेरित करता है। एक अधूरापन ऐसा भी है जो आदमी के लिए अभिशाप की तरह होता है।यह शारीरिक अधूरापन अर्थात अपंगता उन्हें अपने जीवन काल में शारीरिक एवं मानसिक रूप में यातनाओ को भोगने के लिए मजबूर करते हैं। क्योंकि समाज स्त्री या पुरुष के परे एक वर्ग जिसे तृतीय लिंगी या हिजड़ा या किन्नर कहने वाले वर्ग को मानव की संज्ञा देना भी नहीं चाहता है। इस स्त्री पुरुष विभाजन में न विभाजित होनेवाले को घिनौने नज़र से समाज देखते हैं। थर्ड जेंडर का अस्तित्व उतना ही पुराना है जितना मानव जाति का। शारीरिक एवं मानसिक रूप से विकलांग को देखकर हमारे मन में दया या सहानुभूति का भाव उत्पन्न हो जाता है। लेकिन इसके विपरीत लैंगिक विकलांगता को देखकर कौतुक या परिहास का भाव उत्पन्न हो जाते हैं। सामाजिक बहिष्कार से उत्पन्न भेदभाव, शिक्षा का अभाव, बेरोजगारी, चिकित्सा की कमी जैसी अनगिनत समस्याओं से जूझते तृतीय लिंगी समुदाय को समाज की मुख्यधारा में लाने का प्रयत्न आवश्यक है। श्रीमती सविता शर्मा के शब्दों में 'हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यह किन्नर भी हमारी ही तरह इंसान है केवल इनकी प्रजनन क्षमता ही उन्हें हम से अलग करती है किंतु दुनिया में ऐसे कई लोग हैं जो अपराजननता के शिकार है तो हम उनसे तो कभी इस प्रकार का दोहरा व्यवहार नहीं करते जैसा कि इनके साथ।"[1]

साहित्य में किन्नरों की मानसिक स्थिति का पूर्ण संवेदना के साथ चित्रण हुआ है। हिंदी उपन्यासकारों ने इस ओर महत्वपूर्ण कदम उठाई है। नाच-गाने,भीख मांगने या वेश्यावृत्ति करने के अलावा वे भी समाज में सिर ऊँचा करके जीने का हकदार है यह सोच हिंदी उपन्यासकारों को अपनी रचनाओं में तृतीय लिंगी समुदाय को स्थान देने के लिए प्रेरित करता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ये समाज सिर्फ शारीरिक रूप से अक्षम है मानसिक रूप से नहीं।अगर इन्हें समाज के सहयोग मिले तो यह भी समाज में सम्मानीय दर्जा हासिल कर सकते हैं। इस विचार को आम जनता तक पहुँचाने में, तृतीय लिंगी समुदाय के प्रति घिनौने सोच को बदलने में हिंदी उपन्यासकारों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। हिंदी उपन्यास विधा में अब तक प्रकाशित उपन्यासों में नीरजा माधव का 'यमदीप', अनुसूईया त्यागी का 'मैं भी औरत हूँ', महेंद्र भीष्म का 'किन्नर कथा', प्रदीप सौरभ का 'तीसरी ताली', निर्मला गुराडिया का 'गुलाम मंडी', भगवंत अनमोल का 'जिंदगी 50 50', चित्रा मुग्दल का 'नालासोपारा पोस्ट बॉक्स नंबर 203', राकेश शंकर भारती का 'मैं तेरे इंतजार में' आदि तृतीय लिंगी विमर्श के रूप में सामने आए हैं।

इनमें भगवंत अनमोल का 'जिंदगी 50 50' किन्नरों के जीवन की त्रासदी को उद्घाटन करने के साथ-साथ उनकी समस्याओं का समाधान भी सुझाता है। प्रस्तुत उपन्यास में दो किन्नरों की त्रासदी है। यह ऐसे एक परिवार की कथा है जिसमें दो पीढ़ियों में दो किन्नर बालकों का जन्म होता है। इस उपन्यास का नायक अनमोल तिवारी के भाई हर्षा और अनमोल का बेटा सूर्या दोनों किन्नर है। अनमोल

जब एक किन्नर का पिता बनता है तब उसे अपने किन्नर भाई हर्षा की याद आती है जिसके साथ परिवार और समाज ने न्याय नहीं किया। पीढ़ियों की सोच में जो बदलाव आया है इसका खूबसूरत चित्रण उपन्यासकार ने किया है। आधुनिक पीढ़ी के प्रतिनिधि अनमोल तिवारी जब एक किन्नर बेटे का पिता बनता है तब अपनी माँ को बच्चा होने की खबर देते हुए कहा "माँ भगवान ने हमें गलती सुधारने का मौका दिया है।.. हाँ माँ इस बार हम उसे वह सारी खुशियां देंगे जो हर्षा को नहीं दी गई। हम उसे बड़ा अफसर बनाएंगे जो लोग सपने में भी नहीं सोच सकता"।[2]

जब उनके भाई हर्षा का जन्म हुआ तब उनके पिता रामलखन तिवारी को खुशी के बदले ऐसा लग रहा था कि किन्नर का बाप होना सुई की नोक पर रहने के बराबर है। राम लखन तिवारी जो पितृसत्तात्मक सोच का प्रतिनिधि है वह स्वयं को परिवार का ईश्वर मानते हुए अपनी किन्नर संतान हर्षा के लिए मन में तिरस्कार और नफरत की भावना रखता है। उसकी सोच में वह हिजड़े का जन्मदाता इसलिए है कि उसमें पौरुष की कमी है। अन्य कई कारणों से भी वह अपनी संतान के प्रति सकारात्मक रवैया नहीं अपना पाता है। समाज का सोच ऐसा है कि एक किन्नर बच्चे का हकदार उनके माँ बाप नहीं किन्नर समाज ही है। इसलिए जब हर्षा का जन्म हुआ तब इलाके के किन्नर नेता कस्तूरी राम लखन के पास आकर बच्चे को मांगता है। रामलखन का इस प्रस्ताव का इंकार कर देने पर उपन्यासकार ने एक सामाजिक सच्चाई बयान की है 'एक बात नोट कर ले तिवारी। हिजड़े का बाप है तू हिजड़े का! और इतना आसान न है समाज में एक हिजड़े का बाप बनकर जीना। सुई की नोक पर रहना होता है। यह समाज तुझे जीने नही देगा,या तू खुद मर जाएगा, या फिर तंग आकर खुद चलते हुए उस बच्चे को हमारे यहाँ देने आएगा"।[3] अंततः अनमोल के पिता को स्वीकार करना पड़ा कि उनके यहां जन्मा बालक किन्नर है।

जब अनमोल अपना बेटा सूर्या के जन्म की खुशियाँ मनाना चाहता था तब राम लखन हर्षा के जन्म को छुपाना चाहता था। अनमोल बेटा होने की खुशी में फाइव स्टार होटल में पार्टी रखता है।कुछ लोग अनमोल और आशिका की खुशी को तबाह करने के लिए व्यंग्य करते हैं 'बहुत बड़े दिलदार व्यक्ति हो आप अनमोल भाई। ऐसे लड़के के लिए कोई फाइव स्टार क्या घर में नहीं बुलाता।... हाँ अभी अनमोल भाई पार्टी दे रहे हैं कुछ सालों बाद उनका बेटा हिजड़ों की टोली में शामिल होकर हाय हाय करता भीख मांगता नज़र आएगा"।[4] अनमोल के भाई हर्षा के जन्म के अवसर पर उनकी माँ भी न्यौता देना चाहती थी तब राम लखन कहता है आज के बाद न्यौता का नाम ना ले लियो। तुम किसके खातिर न्यौता देना चाहती हो? जो कुछ सालों बाद हमारी हर जगह पर नाक कटवाएगा बेइज्जती करवाएगा?हर कोई इसे हिजडा हिजडा पुकारेगा और मुझे हिजड़े का बाप।इन दोनों प्रसंगों से हम यह समझ सकते हैं कि किन्नर बच्चे के प्रति परिवार की सोच में बदलाव आया है, लेकिन सामाजिक सोच में नहीं।किन्नर बच्चों को परिवार से दूर होकर हिजड़ा समाज में जीने केलिए समाज मजबूर करता है।

किन्नरों का नारी की तरह शृंगार करना सहज एवं स्वाभाविक है। बचपन में हर्षा और सूर्या दोनों चुपके से मौका मिलने पर लड़कियों की तरह सजते संवारते हैं।लेकिन दोनों पिता की सोच में अंतर है।अनमोल अपना किन्नर बेटा सूर्या को 11 वर्ष की उम्र में पहली बार किन्नर की तरह शृंगार करते देखा तब उसकी प्रतिक्रिया शांत थी। सूर्य शीशे के सामने खड़ा अपने माथे पर बिंदी लगाकर अपने होठों पर लिपस्टिक लगा रहा था बिल्कुल नई नवेली दुल्हन की तरह सज रहा था पर मैं कतई चौका नहीं ना ही परेशान हुआ तुरंत आगे बढ़ गया और उससे एहसास भी नहीं होने दिया कि मैंने यह सब देख लिया है'। सूर्या के समान हर्षा का व्यवहार भी लड़कियों के समान था। उसे लड़कियों के खेल खेलना विशेष पसंद था, लड़कियों के कपड़े पहनना भी पसंद था। लेकिन जब अनमोल के पिता एक बार हर्षा को साड़ी पहने हुए और शृंगार किए हुए देखा तो उन्हें जोर से मारा और हिजडों के पास उन्हें छोड़ कर आने की धमकी भी दी। माता पिता को यह समझना चाहिए कि किन्नर बच्चों के शरीर में हार्मोन्स कुछ ऐसे पैदा हो रहे हैं जो उसे लड़कियों की तरह सजने संवरने के लिए प्रेरित करते हैं। किंतु दोनों पिताओं की सोच में अंतर होने के कारण एक का जीवन नरक और दूसरे का जीवन स्वर्ग बनता है। अनमोल जैसे पिताओं के ऐसे धैर्य और समझ अकल्पनीय है। अनमोल के बचपन में उनके भाई हर्षा को लड़कियों के खेल खेलना और औरतों के कपड़े पहनना भी पसंद था। एक दिन उनके माँ बाप बाहर जाते वक्त हर्षा ने साड़ी पहन ली और लड़कियों की तरह होठों पर लिपस्टिक और माथे पर बिंदी भी लगाया। बाबूजी के आने के पहले वह चुप

नहीं हो सका और बाबूजी ने यह दृश्य देख लिया। बाबूजी ने हर्षा की खूब पिटाई की और बोला कि उसे ज्यादा शौक है लौंडिया बनने का, छोड़ आएंगे हिजड़ो के पास तो यहाँ वहाँ छुछुआत मांगत फिरेगा। ये दोनों एक ही दृश्य था। एक पिता का अपने बेटे को लड़कियों की तरह संवारते देखना।अनमोल को इसमें कोई अस्वाभाविकता महसूस नहीं हुई तो उनके पिता क्रोध में दांत पीस रहे थे जैसा कोई अनहोनी दृश्य देख रहा हो।

जब हर्षा बालक था तब घर में आए मेहमान के सामने आने से उन्हें रोकना, मेहमान के सामने से हर्षा को छिपाकर रखना, उनपर हुई बलात्कार की बात सुनकर उनको ही पीटना इस तरह हर्षा की डायरी से उसके दर्द भरे जीवन का दास्तान उनके मरने के बाद ज्ञात होता है। हर्षा से हर्षिता बनना उसकी विवशता एवं आवश्यकता दोनों थी। इसलिए हर्षा मुंबई आकर राधिका नाम के एक किन्नर समुदाय में शामिल हो गई। यहाँ फायदा यह था कि वह किन्नर है या स्त्री या पुरुष कोई पूछता नहीं था। हर्षा ने अपनी डायरी में यों लिखा 'किन्नर होना इतना बड़ा अभिशाप क्यों है? बस मेरा अधूरापन ही तो ना? कैसे-कैसे पल आए! इस शरीर ने सब भुगता, सब सहा।जिस शरीर का लोग मजाक उड़ाते है, उसे ही रात को अपने मन बहलाने का जरिया बनाता है। अच्छा है इन लोगों से दूर अपना एक समुदाय है। मेरे शारीरिक अस्तित्व में दोहरापन है। लेकिन उस तथाकथित समाज के व्यक्तित्त्व के दोहरेपन पर मैं थूकती हूँ"[5] लेकिन अनमोल के पुत्र सूर्य को ऐसी विवशता नहीं थी क्योंकि वह अपने परिवार में खुश है सुरक्षित है। अनमोल एक जिम्मेदार एवं विवेकशील पिता है। इसलिए उन्होंने सूर्या को हर तरह की स्वतंत्रता दी थी। अनमोल को मालूम था कि उसके अंदर अलग तरह के हार्मोन्स जन्म ले रहे थे, जो हमारे शरीर के हारमोन से बिल्कुल अलग थे। खाने-पीने, पहनने से लेकर मिलने तक अनमोल उसे किसी भी तरह इस बात का एहसास नहीं होने देता था कि वह हम सब की तरह सामान्य नहीं है। अनमोलने कभी उसे खुद के चश्मे से देखने की कोशिश नहीं की बल्कि हमेशा उसके नजरिए से उसे देखने का प्रयास किया"।

शारीरिक शोषण केवल महिलाओं के साथ ही नहीं होता बल्कि तृतीय लिंगी समुदाय भी इससे प्रताडित है। डॉ. कविश्री जायसवाल के शब्दों में अंतर केवल इतना है कि महिलाओं के साथ हुए शोषण को संविधान में बलात्कार के अंतर्गत परिभाषित कर दिया गया है। मगर इस समुदाय के साथ किया गया यौन शोषण संविधान की किसी भी परिभाषा में दर्ज नहीं हो सकता।हर्षा के साथ भी बलात्कार होता है किंतु वह किसी को नहीं बता पाता है"।[6] किन्नर की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि उससे केवल मनोरंजन का साधन समझकर उससे छेड़छाड़ की जाती है या अश्लील फब्तियाँ कसी जाती हैं।शारीरिक शोषण केवल महिलाओं के साथ ही नहीं होता बल्कि तृतीय लिंगी समुदाय भी इससे प्रताड़ित है।

संपूर्ण उपन्यास में हर्षा की मानसिक स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण दृष्टिगत होता है। 'जिंदगी 50 50' एक नई सोच लेकर पाठकों के सामने प्रस्तुत है। सिर्फ शारीरिक अपंगता के कारण एक व्यक्तिके सम्पूर्ण जीवन बिगाड़ने में समाज भी उत्तरदायी है। हर्षा को आत्महत्या करना पड़ा इसी समाज की वजह से और सूर्या आगे बढ़ सका सिर्फ अपने पिता के बदले हुए सोच और सहयोग के कारण। हरेक व्यक्तिकी जिंदगी को सम्पूर्ण बनाने में समाज का सहयोग अनिवार्य है। किन्नर हो या साधारण बच्चा सभी रिश्ते के लिए तड़पते हैं। ऐसी स्थिति में यदि उस बच्चे को घर से बेघर कर दिया जाए तो वह आतंकित होगा।लैंगिक अपंगता के कारण यदि कोई बच्चा किन्नर के रूप में पैदा होता है तो इसमें उसका क्या दोष है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. थर्ड जेंडर अस्मिता और संघर्ष, सं डॉ.विजेंद्रप्रताप सिंह, डॉ.रविकुमार गोड
   पृ सं 126, अमन प्रकाशन कानपुर 2020
2. जिंदगी 50 50, भगवंत अनमोल,पृ सं 44, राजपाल एंड सन्स दिल्ली 2019
3. जिंदगी 50 50, भगवंत अनमोल,पृ सं 35, राजपाल एंड सन्स दिल्ली 2019
4. जिंदगी 50 50, भगवंत अनमोल,पृ सं 58, राजपाल एंड सन्स दिल्ली 2019
5. जिंदगी 50 50, भगवंत अनमोल, पृ सं 207), राजपाल एंड सन्स दिल्ली 2019
6. थर्ड जेंडर अस्मिता और संघर्ष, सं डॉ.विजेंद्रप्रताप सिंह, डॉ.रविकुमार गोड
   पृ सं 74,अमन प्रकाशन कानपुर 2020

सहायक आचार्या, हिंदी विभाग
एन.एम.एस.एम.सरकारी कॉलेज, कल्पेट्टा

'उधार' में प्रकृति की उदारता

डॉ. उषा कुमारी.जे.बी.

छायावादी कवि प्रसाद और पंत के बाद हिंदी साहित्य में अज्ञेय द्वारा किया गया प्रकृति वर्णन विविधता और सजीवता से अधिक उल्लेखनीय दिखायी देता है। प्रकृति के प्रति कवि का असीम प्रेम उनकी वैयक्तिक विशेषता भी है। प्रकृति प्रेम का यह संस्कार उन्हें छायावादी काव्यों से ही प्राप्त हुआ है। प्रकृति प्रेमी होने के नाते वे हमेशा घूमते रहे। इसलिए ही उनकी कविताओं में प्रकृति का बहुरंगी चित्र देख पा सकते हैं। प्रकृति को उपदेशिका के रूप में और प्रकृति के हर साधन को बिंब के रूप में उन्होंने अपने काव्य में अंकित किया है।

सन् 1962 से सन् 1966 तक उनके द्वारा लिखी गई 44 कविताएं कितनी नावों में कितनी बार काव्य संग्रह में संकलित की गई हैं। ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त इस काव्य संग्रह की एक कविता है- उधार । इसमें कवि ने प्रकृति की उदारता के सहारे प्यार की महिमा और गरिमा को कलात्मक शैली में चित्रित किया है,तद्वारा आधुनिक मानव के स्वार्थ भरे संकुचित मनोभाव पर प्रहार भी किया है। कविता में कवि ने इस तथ्य पर बल दिया है कि प्रकृति के सामान्य वस्तुओं और जीवों के सामने मनुष्य तुच्छ और निस्सार है। वास्तव में अपने को श्रेष्ठ मानने वाले मनुष्य के पास कुछ भी अपना नहीं है। यहाँ प्रकृति से ही उदाहरण लेकर कवि ने यह सिद्ध किया है कि परोपकार और सहयोग की दृष्टि से देखने पर मनुष्य की अपेक्षा प्रकृति सर्वोच्च स्थान पर शोभित हो रही है।

प्रातः कालीन वर्णन से कविता का आरंभ हुआ है। प्रातः काल में उठे कवि ने देखा है कि धूप खिली हुई है, चारों ओर प्रकाश फैल गया है। प्रकृति के वैभवों से प्रभावित होकर कवि ने पूरे मानव समुदाय का प्रतिनिधि बनकर, प्रकृति की भंगिमाओं और विभवों से लेश मात्र उधार लेना चाहा। कवि के शब्दों में, "मैंने धूप से कहा : मुझे थोड़ी गरमाई दोगी उधार।"[1] इस प्रकार कवि ने खिली हुई धूप से गर्मी, गीत गानेवाली चिडिया से थोड़ी मिठास, हरी-भरी पत्तियों से तिनके की नोक भर हरियाली, सफेद फूलों वाली शंख पुष्पी से किरण की ओक-भर सफेदी, हवा से थोड़ा सा खुलापन और स्वच्छंदता, पानी के लहर से रोम का सिहरन भर उल्लास या उमंग, आकाश से आंख की झपकी-भर असीमता आदि की याचना की। इतना ही नहीं उधार में माँगे गये साधनों को थोड़ी देर बाद लौटा देने का वचन भी दिया।

यहाँ प्रकृति से की गयी कवि की हर माँग से प्रकृति में अंर्तलीन यह सत्य उभर रहा है कि प्रकृति की उदारता में सुखमय जीवन बिताने वाले मूर्ख मनुष्य अपने को स्वयं धनी और समर्थ मान रहा है। प्रस्तुत कविता में इसका समर्थन मिलता है कि मनुष्य की उन्नति का मूल आधार प्रकृति ही है। इसलिए कवि ने मानव को सचेत रहने का इशारा किया है कि अपने जीवन-काल का हर तक क्षण प्रकृति का दान है। प्रकृति से अलग होकर मनुष्य का कोई अस्तित्व भी नहीं है। श्रद्धेय बात यह है कि मानव-जीवन के लिए आवश्यक सभी वस्तुएँ प्रकृति हमें निस्वार्थ भाव से देती है। फिर भी प्रकृति का निरादर करके, भरपूर शोषण करने में मनुष्य दिन-रात बिता रहा है।

आगे की पंक्तियों में उदार प्रगति को उधार देने में डर और संदेह प्रकट करने वाले आधुनिक मानव मन की अभिव्यक्ति रू-ब-रू मिलती है। रात के अंधकार में कवि ने एक स्वप्न देखा, जिसमें एक रूप हीन व्यक्तिने कवि से यह आग्रह प्रकट किया है- "…. इतने तुम धनी हो,/ तो मुझे थोड़ा प्यार दोगे-उधार- जिसे मैं /सौ गुने सूद के साथ लौटाउंगा- / और वह भी सौ-सौ बार गिन के-/जब-जब मैं आउंगा?"[2]

प्रतीत होता है कि यहाँ अरूप व्यक्ति द्वारा की गई 'प्यार' की माँग पूरे मानव समुदाय से है। यह माँग सुनकर कवि निरुत्तर रहे। क्योंकि सभी सुख-सुविधाओं का अनुभव करके, सुखमय जीवन बिताने पर भी, प्यार का अनुभव उन्हें अब तक नहीं हुआ है।

इन पंक्तियों द्वारा कवि इस वास्तविकता पर प्रकाश डाल रहे थे कि आधुनिकता बोध होने पर भी मानव 'प्यार' से अपरिचित है। अर्थात मानव-मन में एक-दूसरे से प्रेम नहीं है। सहजीवियों से प्रेम न रखे तो मानव, 'मानव' कहने योग्य भी नहीं है। प्रकृति की उदारता की तीव्रता इसमें निहित है कि थोड़ा 'प्यार' देने पर वह सौ गुना, हमेशा लौटा देने को तैयार है।यहाँ कवि ने व्यस्त जीवन बिताने वाले स्वार्थी लोगों पर व्यंग्य किया है कि वे 'प्यार' शब्द से और प्यार भरे व्यवहार से परिचित भी नहीं है। यह समझकर अरूप व्यक्तिने 'प्यार' की परिभाषा यों दी है, "... ये ही सब चीज़ें तो प्यार है-/यह अकेलापन, यह अकुलाहट,/ कि जो मेरा है, मेरी ममेतर है"[3]

अर्थात अपने दुःख में, विरह में, अकेलेपन में, व्याकुलता में हम किसी दूसरे की खोज करते हैं, तो उसका नाम 'प्यार' है। अरूप व्यक्तिसे 'प्यार' की नयी परिभाषा सुनने पर कवि समझ सके कि उनके मन में भी 'प्यार' है। लेकिन उन्होंने अपने 'प्यार' का थोड़ा अंश भी किसी को उधार देना नहीं चाहा, "अनदेखे अरूप को/ उधार देते मैं डरता हूँ।"[4]

कवि ने यहाँ संदेह प्रकट किया है कि उधार लेने वाला 'प्यार' लौटा देगा या नहीं। यहाँ कवि के संदेह और डर में मानव सहज स्वार्थता, दुर्बलता और नीचता दृष्टिगोचर होते है। यह कहना कवि का उद्देश्य है कि दूसरों के लिए आवश्यक साधन काफी मात्रा में अपने पास होने पर भी, उसका थोड़ा अंश भी दूसरों को उधार देने के लिए आधुनिक मानव तैयार नहीं है। इससे यह शत प्रतिशत स्पष्ट हो रहा है कि मानव जितना आधुनिक बनता जा रहा है ,उतना स्वार्थी भी।

उल्लेखनीय बात यह है कि मानव को सोच-विचारने की अनेक बातें इस कविता में छिपी हुई रहती हैं। कविता की पहली दो पंक्तियों से यह प्रमाणित भी हो जाता है कि बाहरी रूप से छोटी होने पर भी यह कविता आंतरिक रूप से सार गर्भित है।

'सबेरे उठा तो धूप खिल कर छा गई थी/ और तक चिड़िया अभी अभी गा गई थी।'

सूचित कवि-कल्पना यह है कि माँ की कोख से जन्म लेने वाले बच्चे को पलने के लिए माँ की गोद और लोरी गायन से सानुकूल वातावरण जैसे सुसज्जित किया जाता है, वैसे ही घोर अंधकार में सोये हुए लोगों के सुचारू चाल-चलन के लिए उनके उठने के पहले ही सूरज की किरणें धरती को सुसज्जित कर देती हैं। जागरण की वेला में सकारात्मक अनुभूति प्रदान करने के लिए चिड़ियाँ मीठे स्वर में गाती भी हैं।

यहाँ विदित हो जाता है कि कोमल हृदयवाले कवि ने प्रकृति की हर चाल में मानव हित ढूँढ निकालने की कोशिश की है। हालाँकि प्रकृति की उदारता मानव-कल्पना से कई गुना अधिक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लोक प्रिय साहित्यकार अज्ञेय : सं- डॉ.आर. अई.शांति, डॉ. सुमा, वाणी प्रकाशन, 2022 ; पृष्ठ संख्या- 53
2. वही पृष्ठ संख्या -54
3. वही पृष्ठ संख्या -54
4. वही पृष्ठ संख्या -54
5. वही पृष्ठ संख्या -53

असोसियट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
महात्मा गाँधी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

अभिशप्तता से आत्मविश्वास की ओर
(सुशीला टाकभौरे की रचनाओं की ओर से एक यात्रा)

डॉ. पूर्णिमा.आर

अन्याय का बोलबाला जहाँ होता है, अक्रोश का स्वर वहाँ फूट पडता है। अव्यवस्थित समाज में व्यवस्था लाने का सहज प्रयास समाजसुधारक करता है। तब साहित्यकार भी कदम से कदम मिलाकर उनका साथ देते हैं। समाज साहित्य से और साहित्य समाज से हमेशा प्रेरणा ग्रहण करते हैं। भीमराव अंबद्कर दलितों के शुभचिन्तक एवं मार्गदर्शक थे। उन्होंने दलितों के उत्थान के लिए भरसक प्रयास किया था। इस तरह दलितों पर हुए अत्याचार के खिलाफ ज्योतिराव फुले, पेरिया स्वामी, अच्छुतानन्दजी आदि भी लडे। इन सभी सामाजिक नवोत्थानवादियों के आदर्श और प्रेरणा का प्रभाव तत्कालीन समाज के दलितों पर पडा। सुशीला टाकभौरे के व्यक्तित्त्व और कृतित्व में उपर्युक्तसभी सामाजिक सुधारकों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित है। हिन्दी साहित्य जगत में और महाराष्ट्र के सामाजिक क्षेत्र में इनकी अलग पहचान है। वे एक चर्चित साहित्यकार मात्र नहीं, समाजसेवी महिला भी है। अपने साहित्यक कृतियों में उन्होंने जो कुछ लिखा, समाज में आकर उन्होंने सक्रियता से उसे निभाया।

सुशीला टाकभौरे का जन्म 4 मार्च 1954 को मध्यप्रदेश में हुआ था। उस समय तत्कालीन मध्यप्रदेश समाज में जातिव्यवस्था और छुआछूत की भावना का बोलबाला था। लेखिका वाल्मीकी जाति की थी। वर्णवादी, जातिवादी, विषमतावादी समाज के अनुसार इन्हें अछूत माना जाता था। स्वयं दलित और स्त्री होने के कारण उन्हें जीवन में दोहरे संघर्ष को झेलना पडा। उन्होंने दलितों की व्यथा को नज़दीक से देखा, भोगा।स्वयं दोहरे संताप को झेला। दलित होने का संताप और नारी होने का संताप दोनों से वह पीडित है, परेशान भी।शुरू शुरु में गाँधीवादी विचारधारा का सम्यक प्रभाव उनपर पडा था। लेकिन बाद में दलितों के मसीहा बाबा साहब अंबदकर की विचारधारा को उन्होंने आत्मसात किया। सौम्यशील गाँधीवादी से वे विद्रोही क्रान्तिकारी दलित बनी।

सुशीला टाकभौरे के साहित्य में नारी मुक्तिके स्वर सुनने को मिलेंगे। साहित्य की विभिन्न विधाओं-कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, आत्मकथा, निबंध और विभिन्न वैचारिक लेखों के माध्यम से उन्होंने स्वयं को अभिव्यक्त किया है। 'स्वाती बूँद और खारे मोती', 'यह तुम भी जानो', 'हमारे हिस्से का सूरज', 'तुमने उसे कब पहचाना' आदि उनके प्रसिद्ध काव्य संग्रह है। 'परिवर्तन ज़रूरी है' उनके प्रमुख वैचारिक लेख है। उनके प्रसिद्ध निबन्ध हैं 'वह लडकी', 'तुम्हें बदलना ही होगा'। 'शिकंजे का दर्द' सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास है 'नीला आकाश', 'तुम्हें बदलना ही होगा' और 'वह लडकी'। इसके अलावा 'हिन्दी साहित्य के इतिहास में नारी-एक नज़र(लेख)', 'दलित साहित्य एक आलोचना दृष्टि' और 'मेरे साक्षात्कार', 'कैदी नं.307' इत्यादि इनकी प्रमुख रचनाएँ है। समाज में दलितों और महिलाओं की स्थिति को उजागर करने में उनकी नाट्यकृतियाँ भी कामयाब रही। वे हैं -रंग और व्यंग्य,नंगा नृत्य ,जीवन के रंग,व्हील चेयर आदि।

कविताओं की ओर : दलित कविता लेखन में सुशीला टाकभौरे की अहम भूमिका है। स्वयं दलित जीवन की व्यथा को झेलने के कारण उनकी कविताओं में अनुभूति की प्रमाणिकता है। इनके चार काव्य संग्रहों में पहला हमारे हिस्से का सूरज है।इसमें दलित स्त्रियों की

वर्तमान स्थिति का वास्तविक वर्णन है। कानून और पुलिस की सुरक्षा व्यवस्था की मदद से सवर्ण दलितों पर अत्याचार करते हैं। स्त्रियों की दर्दनाक स्थिति के लिए मनु और उनकी मनुस्मृति को वे ज़िम्मेदार ठहराती है। मनुस्मृति के आधार पर आज तक दलित अपने हक से वंचित रहे हैं, इसी मनुस्मृति के कारण वह पिछडता रहा है। 'आक्रोश' कविता में आक्रोश भरे स्वर में उनकी आवाज़ है-स्मृति-काल से जो/उपेक्षित अमानव माना गया/उसे आज तक क्या मिला/सोचा कभी आपने1

अपनी कविताओं में सुशीला टाकभौरे ने दलित और स्त्री मुक्तिकी आवाज़ बुलन्द की। दलित स्त्री के लिए सामाजिक माँग की न्याय उनकी कविताऔं में मुखरित है। उनकी जानकी धर्ती में नहीं, देवकी की कन्या की तरह आकाश में जाना चाहती है,और बिजली-सी चमककर सन्देश देना चाहती है। क्योंकि पृथ्वी में मानव का मानव के प्रति अमानवीयपूर्ण व्यवहार हो रहा है। कवि हृदय इस पर व्यथित है। भूकम्प के समान यह व्यवहार मानवता के धरातल को तहस नहस कर देता है। पीडाएँ यहाँ फसलों के समान उगती रहती है, जितना काटते रहे, उससे कई गुना ज़्यादा उग आती है। कंसीय मानसिकता का अन्त कर मानव मानव के बीच के भेदभाव के अन्त का सन्देश उनकी कविताओं में है।

आदमी और औरत में बराबरी आवश्यक है। व्यक्तिकी पहचान उनके व्यक्तित्व के आधार पर होना है, न तो उनके लिंग और जाति के आधार पर। समाज हमेशा स्त्री पर दोष मढा जाता है। पुरुष सत्ताप्रधान समाज में हमेशा स्त्री को उपेक्षाभरी दृष्टि से देखा जाता है। वह पूछ्ती है कुत्ता-कुतिया दोनों एक दूसरे के पूरक है, किन्तु कुत्ता वफादारी का प्रतीक है, कुतिया गाली है।

स्त्रियों का दायरा सीमित ही रहा है। वह उस दायरे को संसार समझ बैठी है। हर जगह दलित स्त्रियाँ परतंत्रता भरी ज़िन्दगी जीती है। इन्हें समाज अपने नियमों में जकडा रखा है। स्त्री लिखते वक्त, बोलते वक्त और समझने की कोशिश करते वक्त सदा भयभीत रहती है। पहरेदारी के लिए उसके चारों ओर कोई है, जैसे खरीदी गयी संपत्ति के लिए चौकीदार है और मज़दूर औरत के लिए ठेकेदार है। बोलते वक्त बातों को संभालकर सबके दृष्टिकोण से देखकर वह बोलती है, क्योंकि वह स्त्री है। स्त्री की आँखें, कान, विचार स्वतंत्र है, सिर्फ पाँव में बन्धन है। दरवाज़े के पीछे से वह संसार देखती है, वह सब कुछ समझने लगी है, फिर भी चुप्पी साधती है। इन स्त्रियों से कवयित्री का आह्वान है घर की चौखट से बाहर निकलकर आगे बढना है क्योंकि आनेवाली पीढियों को बचाने का महान कार्य उसे करना है।

कहानियों पर एक नज़र : सुशीला टाकभौरे के तीन कहानी -संग्रह हैं-अनुभूति के घेरे, टूटता वहम और संघर्ष। लेखिका ने 1968 में आठवीं कक्षा में पढते वक्त अपनी पहली कहानी लिखी।जिसे बाद में व्रत और व्रती शीर्षक से ''टूटता वहम' कहानी संग्रह में छापा गया। 'टूटता वहम' 1997 में प्रकाशित उनका दूसरा कहानी संग्रह है। लेखिका ने अपनी कहानियों से दलित समाज में जागृति फैलाई। 'जातिवाद'और 'अंधविश्वास' के खिलाफ 'अनुभूति के घेरे' संग्रह की कहानियाँ (भूख,त्रशूल,सारंग तेरी याद में आदि) आवाज़ उठाती है। दलित के संघर्ष से भरी हुई कहानियों में अंबेद्करवादी विचारधारा का विस्तार है।

'सिलिया' उनकी सर्वाधिक चर्चित कहानी है।सरलता,सादगी के साथ अपने रास्ते पर चलनेवाली दलित कन्या के उत्तरोत्तर विकास का वर्णन इस कहानी में है।अछूत कन्या सिलिया मेट्रिक की पढाई करती थी। उसने अथक परिश्रम करके उच्चशिक्षा प्राप्त की।दलित मुक्तिआन्दोलन की कार्यकर्ता बनी। करीब बीस साल तक सिलिया ने दलितों के उद्धार के लिए दिन-रात काम किया। सिलिया की कहानी के ज़रिए शिक्षा की महत्ता को लेखिका

उद्घोषित करती है। कहानी से संबन्धित एक वक्तव्य में लेखिका सिलिया को आत्मप्रेरणा से लिखी गई, अपनी अनुभूति से लिखी गई कहानी मानती है। सिलिया कहानी इस बात को रेखाँकित करती है कि शिक्षा ही वह माध्यम होगा जिसके द्वारा हम अपने आत्मविश्वास को बढा सकते हैं, अपनी ताकत को बढा सकते हैं और अपनी योग्यता को बढा सकते हैं और अपना सम्मान खुद पा सकते हैं।

तीनों कहानी संग्रहों की कथाओं में दलितों के प्रति सहानुभूति का स्वर सुनाई पडता है। लेखिका ने दलितों को चेताया कि अंबेद्करवादी विचारधारा से जुडकर अपने अस्तित्व की रक्षा करे। समाज और देश उन्नति की ओर अग्रसर है, वहीं निम्न जाति के लोग निम्नतर होते जा रहे हैं। वर्तमान समाज में स्त्री की उन्नति के लिए शिक्षा ज़रूरी है। लेखिका ने दलित जातियों की व्यथा को वाणी दी है। वहीं दूसरी ओर यह संकेत किया है कि दलितों को भी जीने का अधिकार है, वे भी मनुष्य है, वे भी अपने अन्याय, अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठा सकते हैं।

उपन्यास : सुशीला टाकभौरे द्वारा रचित तीन उपन्यास हैं- नीला आकाश, तुम्हें बदलना ही होगा और वह लडकी। नीला आकाश में दलित जीवन का यथार्थ है। इसमें दलितों की वर्तमान दशा, दिशा और भविष्य की आशा -आकाँक्षा को व्यक्त किया गया है। इस उपन्यास में मातंग और वाल्मीकी जाति की एकता पर विशेष ज़ोर दिया गया है। इसमें महाराष्ट्र के एक गाँव की छोटी-छोटी बस्तियों का विवरण है। सदियों से आ रहे सामाजिक भेदभाव और छुआछूत की परंपरा वहाँ भी मौजूद है। सवर्ण लोग दलितों का अपमान करता है। इस उपन्यास की दलित जातियाँ समय के साथ परिवर्तन की ओर नज़र आ रही है। उपन्यास के पात्र अपने जीवन से प्रेरित होकर आगे की पीढी को जागृत कर रहे हैं। तुम्हें बदलना होगा उपन्यास में दलित जीवन की जातिगत समस्याओँ को आज के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया है। अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन देने से जातिभेद को मिटा सकते हैं। लेखिका ने अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित करने की कोशिश की है।

वह लडकी उपन्यास में दलित नारी के जीवन संघर्ष की कथा है। अन्यायपूर्ण समाज-व्यवस्था और रीति-रिवाज़ को बदलने की चाह इस उपन्यास में है। स्त्री पुरुष की समानता को बढावा देना है। स्त्रियों को शोषण -मुक्त, सुरक्षित जीवन प्रदान करना है। दलित नारी मुक्ति के सम्मेलनों में अक्सर नारी मुक्तिके नारे लगाते रहते है, पर अपने आसपास होनेवाले अत्याचार को रोकने का प्रयास नहीं करते हैं। दलित मुक्ति के लिए जो अभियान चलाए जाते हैं उनकी कथनी-करनी में एकता होनी है। उपन्यास में इन सभी विषयों को उठाया गया है।

नाटकों की ओर एक नज़र : रंग में व्यंग्य उनकी सोद्देश्यपूर्ण नाट्यकृति है। इसमें शोषण और भेदभाव के विरुद्ध अपनी प्रतिक्रिया उन्होंने ज़ाहिर की है। एक गाँव के पटेल का दलितों के प्रति किए गए रवैए को दर्शाया गया है। दलित लोगों को जूठन खाने के लिए मज़बूर करते हुए पटेल का कथन है "हिन्दू महाजनों की जूठन बहुत पवित्र होते हैं। नसीब वालों को बडे नसीब से मिले हैं। ये जानवरों के लिए नहीं,समझ गई" ....रंग में व्यंग्य पृष्ठ संख्या 14

इस नाटक की महिला पात्र छब्बो वर्तमान समय की दलित महिलाओं का प्रतिनिधि पात्र है। अपना सम्मान के लिए जूठन से वह इनकार करती है। निडरता से वह अपना हक माँगती है। अंबेद्कर की विचारधारा नाटक में प्रवाहित है। अबेद्कर को दलित अपने नेता मानते हैं। धब्बो कहती है कि अंबेद्कर जी की बातों को समझकर उसे मानने में ही हमारी जाति की भलाई है।

'जीवन के रंग' नाटक में धार्मिक, सामाजिक कुरीतिओं तथा पुरुष सत्तात्मक समाज का वास्तविक चित्र

प्रस्तुत किया गया है। नाटक में स्त्रियों के अंधविश्वास को दर्शाया गया है। अंधविश्वास के साथ वह पति को परमेश्वर मानती है। चाहे वह परमेश्वर उनको तकलीफ देता रहे। समाज के इस सोच में बदलाव लाकर स्त्री-पुरुष में बराबरी की भावना कायम करना इस नाटक का उद्देश्य है। लेखिका के नाटक 'नंगा सत्य' में दलितों पर लोक नायकों और महापुरुषों का प्रभाव दिखाया गया है। दलितों की जागृति इन महापुरुषों के द्वारा हुई है।

समाजिक न्याय और बराबरी की स्थापना के उद्देश्य से सुशीला टाकभौरे ने नाटकों का सृजन किया है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दलितों का उत्थान अनिवार्य है। सवर्ण - अवर्ण के भदभाव को मिटाने से सामाजिक समानता की स्थापना होगी। समता,स्वतंत्रता और सम्मान को पहचानने से दलितों के बीच चेतना उजागर होती है। इस चेतना के उदित होने से स्वाभाविक रूप से समाज की अपाहिज मानसिकता का भी अन्त हो जाएगा। यही सन्देश सभी नाट्य कृतियाँ देती हैं।

आत्मकथा और निबंधः लेखिका ने अपने जीवन के अनुभवों को 'शिकंजे का दर्द' में प्रस्तुत किया है। भारतीय समाज में मौजूद जातिभेद, उँच-नीच की भावनाएँ, दलित समाज का अपमान और शोषण एवं उनकी अभावग्रस्त परिस्थितियों से लेखिका इस आत्मकथा के माध्यम से लोगों को अवगत कराती हैं। इसमें दलित नारी के शोषण का संघर्ष है। जिस प्रकार कोई जानवर शिकारी के जाल में फंस जाता है और मुक्तिके लिए भीतर से दर्दनाक चीख बाहर निकलती है, वह जितना मुक्त होने के लिए छटपटाता है, उतना ही उसमें उलझता जाता है। वैसे ही एक नारी अपने आपको शोषण से मुक्तहोने के लिए छटपटाती है तो वह उसमें उतना ही फंसती जाती है। लेखिका का कथन है - जातिभेद के दंश ने मुझे बहुत पीडित किया है। मेरे साथ ही ऐसी घटनाएँ क्यों घटी यह बात नहीं हैं, ऐसी घटनाएँ मेरे जैसे सभी के साथ लगातार घटती रही हैं। ...मानसिक संताप की ये घटनाएँ मेरे लिए अविस्मरणीय बन गई हैं।

हाशिए का विमर्श नामक अपने निबंध के माध्यम से हाशिए कृत जाति समुदायों की जागृति और जीवन स्तर में परिवर्तन का सन्देश देने का प्रयास किया है। जातिभेद और लिंगभेद की विषमता से पीडित हाशिए कृत लोगों में व्याप्त धार्मिक अन्धविश्वास की ओर इसमें संकेत किया गया है। इसमें भोग्या नारी की दुर्दशा, उसके पैरों में धर्म के नाम पर डाली गई बेडियाँ, समाज में उत्पन्न रूढियों को खुलकर चुनौती दी गई है।

विलक्षण प्रतिभा से युक्त है सुशीला टाकभौरे का व्यक्तित्व।स्वयं दलित होने के नाते उन्होंने दलित-व्यथा को नज़दीक से देखा है, भोगा है। पुरुष सत्तात्मक प्रवृत्ति और भेदभाववादी सामाजिक संरचना के प्रति उनके मन में चिड़ है। वर्ण व्यवस्था, विसंगति, दलित जीवन का त्रास, छुआछूत, दलितबोध, भूख, गरीबी पर वह आग बरसाती है। नारी का अपना व्यक्तित्व है, वह किसी पर निर्भर नहीं, स्वयं पूर्ण है,आत्मसम्मान और आत्मविश्वास से भरे मन से उसे अपनी मंजिल पर पहुँचना है। वास्तव में उनका साहित्य अभिशप्तता से आत्मविश्वास की मंजिल तक की यात्रा है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. हमारे हिस्से का सूरज(काव्य संग्रह)- सुशीला टाकभौरे - पृ, सं 55
2. दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र - ओमप्रकाश वाल्मीकी-राधाकृष्ण प्रकाशन-2005,अनसारी राड, नई दिल्ली
3. बयान पत्रिका-जानवरी, पृ सं 44
4. बयान पत्रिका-जूलाई 2012
5. हंस पत्रिका -नवंबर 2013 पृ.सं.49
6. युद्धरत आम आदमी-अंक 41,1998

असोसियट प्रोफसर, हिंदी विभाग
सनातन धर्म कॉलेज, आलप्पुष़ा

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यास में वृद्ध जीवन : 'गिलिगडु' और 'दौड' के विशेष संदर्भ में

सुरभि.एस.

इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य विशेष रूप से पिछली सदी से बिलकुल अलग हो गया है। इस सदी का साहित्य एकदम नए मुद्दों का चित्रण करनेवाला विस्तृत फलक है। नए सदी के आगमन पर लेखकों को नए प्रकल्प का सृजन करना अनिवार्य लग रहा है । परिवर्तित परिवेश में व्यक्ति की गहन जीवन-पद्धति, मूल्य दृष्टि, रिश्ते नाते आदि में जो बदलाव आया, साहित्य का इस सबसे गहरा संबंध रहा, इन सब स्थितियों में मनुष्य के मनुष्यत्व को बचाने की चिंता और व्याकुलता पूरे साहित्य में विभिन्न विधाओं और विभिन्न रू पों में चित्रित हुई।"[1] समाज में उत्पन्न विभिन्न समस्याओं का प्रतिरोध साहित्य के माध्यम से चिन्तन-मनन करके समस्याओं का समाधान ढूँढ निकालने की कोशिश ही विमर्श कर रही है। स्त्री, दलित, किन्नर, आदिवासी, प्रवासी, क्वीर, विकलांग आदि विभिन्न वर्ग के लोगों की समस्याओं के चिन्तन के साथ ही वृद्धों के जीवन और उनकी समस्याओं का बखूबी अंकन मिलता है । साहित्य हो या समाज युवा पीढी के भविष्य पर चिंतित है, साथ ही बुजुर्गों का ख्याल रखना भी अनिवार्य है। अगर हम हिंदी उपन्यास पर विचार करे तो अज्ञेय जी के अपने अपने अजनबी से लेकर अब तक वृद्ध जीवन का यथार्थ एवं प्रतिरोध की नज़र मिलती है। इसी दृष्टि से देखे तो सन 2000 में प्रकाशित ममता कालिया जी का दौड़ और 2002 में प्रकाशित चित्रा मुद्गल जी का गिलीगडु वृद्ध जीवन के यथाथ को दर्शानेवाले अमूल्य रत्न हैं।

भूमंडलीकरण और उत्तराधुनिक संस्कृति में जकड़े हुए मानव जीवन का सही प्रस्तुतीकरण है ममता कालिया जी का दौड़। उपन्यास बाजारीकरण, उपभोक्तावाद जैसे विभिन्न आयामों को छूते हुए वृद्ध माता -पिता के प्रति बच्चों की संवेदनहीनता और उपेक्षा की भावना जैसे तमाम समस्याओं को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।। उपन्यास के रेखा और राजेश मध्यवर्गीय परिवार के बूढ़े माँ- बाप का प्रतिनिधित्व करते हैं। बच्चों का सपना साकार करने के लिए रेखा और राजेश ने अपनी जिंदगी अरबत कर ली। बच्चों को उच्च शिक्षा प्रदान करके उन्हें बहुत काबिल बनाते हैं। उत्तराधुनिक युग में कैरियर और कमाई के पीछे दौड़नेवाले बच्चे सेवानिवृत्त बूढ़े माँ बाप को फालतू चीज़ मानने लगते हैं। बच्चों के दूर जगह काम करने की वजह से दोनों अकेलेपन में जकड़े हुए हैं। बुढ़ापे में अकेलेपन की त्रासद स्थिति का चित्रण रेखा के कथन में है - "इसको भी ले जाओगे तो हम दोनों बिलकुल अकेले रह जाएँगे। वैसे ही यह सीनियर सिटीजन कॉलोनी बनती जा रही है। सबके बच्चे पढ़- लिखकर बाहर चले जाते है, हर घर में, समझो, एक बूढ़ा, एक बूढी, एक कुत्ता और एक बस यह रह गया है।"[2]

कभी -कभी माँ -बाप अपने बच्चों की चिंता में आनेवाला परिवर्तन समझने में असमर्थ रह जाते हैं। पीढ़ियों की विचारधारा में अंतराल होना स्वाभाविक है। फिर नए युग में समय के साथ समझौता करने में बुजुर्ग लोग भी असमर्थ बन जाते हैं। सभी लोग अच्छी कमाई मिलने पर सब कुछ समर्पित करके विदेशी बनकर जीने के लिए विवश है। आज के भोगो फेंको संस्कृति में पारिवारिक मूल्य निरंतर घट रहा है। बेटे को देखने के लिए माँ- बाप को टाइम टेबल देखने की नौबत आ गई है। पवन से मिलने के लिए व्याकुल होकर आई मां से पवन कहता है "आपने आप आई हो। बिना खबर दिए। तुम्हारे इरादे भी

संदिग्ध थे। तुम्हें मेरा टाइम टेबल पूछ लेना चाहिए थे।"[3]

अब लोग जीवन में एथिक्स और मोरालिटी के बजाय प्रोफेशनल एथिक्स के पीछे ही दौड़ रहे हैं। वृद्धावस्था की समस्याएँ झेलनेवालों में सोनी साहब प्रमुख है। अपनी व्यस्तता में दौड़नेवालों में कभी यह चिन्ता नहीं आती कि माँ- बाप अकेलापन वनवास की तरह भोगते हैं। सोनी साहब के दाह संस्कार के अवसर पर बेटा सिद्धार्थ नहीं आता है। बेटा अपनी माँ से कहता है "आप ऐसा कीजिए इस काम के लिए किसी को बेटा बनाकर दाह संस्कार करवाइए। मेरे लिए तेरह दिन रुकना मुश्किल होगा। आप सब काम पूरे करवा लीजिए। मजबूरी है ममा, मेरा दिल रो रहा है। मैं आपकी मुसीबत समझ रहा हूँ। और घर अनजान लोगों के लिए खुला मत छोड़िएगा इंडिया में अपराध कितना बढ़ गया है, हम बी.बी. सी पर सुनते रहते हैं।"[4]

जीवन में आनेवाले कटु सत्यों को पहचानकर सिन्हा साहब अपने जीवन काल में ही गोदान कर दिया। भूमंडलीकरण के दौर में गुजरते समाज में सब कुछ रेडीमेड रूप में मिलता है। अब सब लोग बाहरी दिखावट के लिए ही पैसे जुड़ाते हैं। सोनी साहब की जिंदगी सब वृद्धों के लिए कुछ न कुछ सबक सिखाती है। सभी बुजुर्ग लोग अपना दाह संस्कार के लिए दो चार हजार रूपए बैंक में रखना ज़रूरी समझता है। नई पीढ़ी अपने जड़ों से अलग होकर जीना चाहता है। इसीलिए पुरानी पीढ़ी को भी इसके साथ समझौता करना पड़ता है।

ममता कालिया जी के 'दौड़' की तरह वृद्ध जीवन का यथार्थ, त्रासद एवं अलगी नज़र प्रदान करनेवाले चित्राजी का श्रेष्ठतम उपन्यास है 'गिलीगडु'। इसमें भी वृद्धों के बाह्य और आंतरिक जीवन स्थितियों को अंकन करने की कोशिश की है। इसमें रिटायर्ड सिविल इंजिनियर जसवंतसिंह और कर्नल स्वामी दो पात्र के रूप में उभर आते हैं। ये जीवन काल का अंतिम एवं विशेष मोड़ पर पहुँचकर बिखरते हुए टुकड़ों को जोड़कर जीनेवाले पात्र हैं। दोनों जीवन का लंबा सफर पार करके अनुभवों का खजाना बन चुका है। दोनों उच्च आर्थिक स्थिति में जीनेवाले भी हैं। पत्नी के निधन के बाद बेटे और उनके परिवार के साथ रहनेवाले जसवंतसिंह निरंतर, अपमान, उपेक्षा और घृणा का पात्र बनते हैं। घर का कुत्ता टॉमी आदर और शान का प्रतीक है। कुत्ते को उपयोगी समझनेवाले लोगों के मन में रिटायर्ड पिता के साथ वक्त बिताना बेकार लगता है। जसवंतसिंह अपने परिवार का वास्तविक हाल मित्र कर्नल स्वामी से व्यक्त करता है। परंतु कर्नल स्वामी जसवंतसिंह के सामने एक नकली आदर्श परिवार की कहानी सुनाता है। कर्नल स्वामी जसवंत सिंह के लिए फिनिक्स के जूते, अर्निका की गोलियाँ, कभी-कभी घर का स्वादिष्ट खाना भी लाकर देते हैं। शून्य और अंधकारमय ज़िंदगी में उत्साह भरने के लिए घुमाने के लिए लेकर जाते हैं। कंप्यूटर सीखने की प्रेरणा भी देता है।

न्यूक्लियर फैमिली के चंगुल में फँसे नवीन पीढ़ी में मानवीय अनुभूति का स्पर्श घट रहा है। जसवंत सिंह को अपने पोते मलय का जन्मदिन परिवार के साथ मनाने का सपना था। परंतु मलय अपने परिवार के साथ ही नहीं, दोस्तों के साथ जन्मदिन मनाना चाहता है। आज के युग में प्राथमिक संबंधों से बढ़कर द्वितीय संबंधों को अधिक स्थान देते हैं। पारिवारिक रिश्तों की हालत ऐसी हैं "बुद्धि विकास की आड़ में बड़ी खूबसूरती के साथ बच्चों को संवेदनच्युत किया जा रहा है। इतना कि बच्चे कभी परिवार में न लौट सके न कभी अपना परिवार गढ़ सके।"[5]

जसवंत सिंह से बहू और बेटे ने भी कोई आदर और प्यार लगाव नहीं दिखाया है। कुत्ता टॉमी के लिए चैनल बदलने वाले बहू ससुर को भोजन भी नहीं देती है। बेटी शालिनी और बहू दोनों माँ के मूल्यवान गहने और सिल्क की साड़ियाँ हड़पने की आकांक्षा में हैं। बुढ़ापे में आमतौर पर शारीरिक शिथिलताएँ आती हैं।

स्मृतियाँ कम होना स्वाभाविक हैं। बत्तियां बंद करना, नाला बंद करना या लिफ्ट का दरवाजा बंद करना भूल जाए तो अपराधी के रूप में मौन होकर रहना पड़ता है। पड़ोसन मिसेज श्रीवास्तव की शिकायत पर बिना पूछे ही सुनयना अपने ससुर के खिलाफ आवाज़ उठाती है । "आखिर बाबूजी इस संभ्रांत सोसाइटी में उनकी इज्जत खाक में मिलने पर क्यों उतारू हैं अपनी उम्र का लिहाज किया होता अभी भी जवानी का जोश बाकी हो तो दिक्कत कैसे चले जाया करें रेड लाइट एरिया।"[6]

वर्तमान समय में कुकुरमुत्ता की तरह बढ़ते हुए वृद्ध आश्रमों की संख्या यंत्रणा से जकड़े मानवीय मन का स्पष्ट प्रमाण भी है। जसवंत सिंह का बेटा नरेंद्र उसे वृद्ध आश्रम आनंद निकेतन पर रखने का निर्णय लेता है। बेटी भी उस बात पर सहमत हो जाती है। जसवंत सिंह की तुलना में कर्नल स्वामी को जीवन के प्रति नजरिया बिल्कुल अलग है। कर्नल स्वामी तीन बेटे पोतियों के साथ खुशी और संतृप्त जीवन बिताने की बात कहते हैं। परंतु वास्तविक चित्र इसके विलोम ही था। यथार्थ जीवन में उन्हें अपने पोतियों से कभी मिलने का अवसर भी नहीं मिलता है। संपत्ति के लिए मझला पुत्र श्री नारायण स्वामी को निरंतर पीटता रहता है। अंत में कर्नल स्वामी को जीवनदान भी करना पड़ता है। ऐसे बच्चों के बारे में मिसेज श्रीवास्तव का एक कथन महत्वपूर्ण लग रहा है "ऐसी कसाई औलादों से तो आदमी निपुता भला। हमें इस बात का कोई गम नहीं कि हमारी कोई अपनी औलाद नहीं।"[7]

जसवंत सिंह के लिए कर्नल स्वामी का व्यक्तित्व सदा प्रेरणादायक है साथ ही सभी वृद्धों के लिए भी प्रेरणा स्रोत बन जाता है "लिव लाइफ शेर अपनी तरह से अपनी शर्तों पर।"[8]

जसवंत सिंह को कर्नल स्वामी के जीवन की असलियत का पता पड़ोसन मिसेज़ श्रीवास्तव से चलता है। अपने ही जीवन में इतनी बड़ी त्रासदी को भोगते हुए भी कर्नल स्वामी दूसरों को खुश रखना चाहता था । गंदी बस्तियों पर जीने वाले बच्चों को पढ़ाते थे। अपने पैसे उन्हीं बच्चों की जरूरतों पर खर्च किया करते थे। अब जसवंत सिंह है सदियों से ही चली आ रही खानदानी परंपरा को बदलना चाहते हैं। वसीयत नौकरानी सुनसुनिया के नाम पर बदलकर बाकी जीवन अपना जीवन गिलीगडु कार्त्यायनी और कुमुदिनी के साथ बिताना चाहते हैं। कानपुर की संपत्ति अर्जित संपत्ति के रूप में लिखकर बैंक में नया लॉकर भी लेना चाहते हैं। सुनगुनिया का पुत्र रामरतन अंतिम दाह संस्कार का अधिकार भी देना चाहता है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि दौड़ और गिलीगडु दोनों उपन्यास अपने त्रासद परिणाम में भी प्रतीक्षा की नयी कली खिलाने वाला उपन्यास है। इसमें नैतिक मूल्यों के विघटन का चित्र खींचने के साथ-साथ वृद्धों को आगे जीने की प्रेरणा भी देता रहता है। जीवन के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण छोड़कर सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा इसमें है। वृद्धावस्था को बेकार समझना नहीं उसे दूसरों के लिए प्रेरणादायक भी बना देना है। परिवेश जितना भी कठिन हो उसमें प्रतीक्षा का नया किरण सदा ही पलता रहता है।

सहायक ग्रंथ सूची

1. 21 वी शती का हिंदी उपन्यास- पुष्पलाल सिंह , पृ. सं 43
2. दौड़ - ममता कालिया, पृ. सं 43
3. वही - पृ. सं 63
4. वही - पृ. सं 89
5. गिलीगडु - चित्रा मुद्गल , वही पृ. सं 90
6. वही - पृ. सं 59
7. वही - पृ. सं 138
8. वही - पृ. सं 63

शोधछात्रा,
सरकारी वनिता कॉलेज,
तिरुवनंतपुरम।

केरल ज्योति परिवार

मुख्य संपादक

प्रो. डी. तंकप्पन नायर

संपादक

डॉ. रंजीत रविशैलम

संपादकीय मंडल

सदानन्दन जी.
मुरलीधरन पी.पी.
प्रो.रमणी वी.एन.
चन्द्रिका कुमारी.एस.
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर.एल.
प्रभन जे.एस.
अधिवक्ता मधु बी. (मंत्री)

विस्थापन की त्रासदी : 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान'

हिमा.एम.एन.

शोधसार : हिंदी साहित्य में बंटवारे पर लिखी रचनाएँ अनेक हैं। जिन हाथों से वे लिख रहे हैं, उन्होंने उस दौर को देखा है। कृष्णा सोबती का उपन्यास 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' इस बात का गवाह है कि बंटवारे का दंश झेल चुकी एक लड़की अपने पुराने मुल्क लौटाने की आस में सिरोही पहुँचती है, लेकिन सियासती छल और कूट राजनीति ने उनकी सुंदर सपने को झुटला दिया। रियासतों की पुनः प्रतिष्ठा के लिए तमाम कोशिशें, लोकतंत्र, कानून और सरकार की स्थापना को लेकर गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान के बीच पहुँचने का उनका द्वंद्व बंटवारे का दंश है।

मूल शब्द : विभाजन,विस्थापन,बेदखल।

प्रस्तावना

महाकाव्य की तरह जीवन और जगत के विविध रूप प्रस्तुत करने में उपन्यास समर्थ है। इसलिए गहराई और शक्ति की दृष्टि से राल्फ़ फॉक्स ने उपन्यास को आज के युग का महाकाव्य कहा है।स्वतंत्रता की लड़ाई में भारत की जनता ने जहाँ आत्म चेतना में आँखें खोली और स्वाभिमान तथा संघर्ष का पाठ पढ़ा वहाँ उन्हें सांप्रदायिकता के विषबेल को भी झेलना पड़ा। आधुनिकता का एक महत्वपूर्ण पहलू है अपनी बुद्धि का इस्तेमाल करना। भारतेंदु ने अपनी बुद्धि का इस्तेमाल यूँ किया कि वह समाज, राजनीति, अर्थ तंत्र, चिंतन आदि की नई घटनाओं को पहचान कर उन्हें अपनाया। भारतेंदु की इस विरासत को प्रेमचंद ने अधिक गंभीरता से आगे बढ़ाया। उसी परंपरा में अपने अलग तरीके को लेकर यशपाल, भीष्म साहनी, कुशवंत सिंह, मंटो, कृष्णा सोबती, अमृता प्रीतम जैसे क्रांतिकारी रचनाकार भी आए जिन्होंने देश की स्वाधीनता और विभाजन के फल स्वरूप बदले तत्कालीन समाज और मानसिकता पर सूक्ष्म निरीक्षण किया।

रोचक बात है कि अलग-अलग तरह के लेखक भिन्न प्रकार से जीवन की व्याख्या करते हैं और उसका विश्लेषण भी। कृष्णा सोबती का पूरा साहित्य वैचारिक संघर्ष का दस्तावेज है। 'जब लेखक अपने कथ्य के अनुरूप भाषा को रूपान्तरित करता है तो कुछ नया गठित होता है।'[1] कृष्णा जी के इस कथ्य के आलोक में अगर सूरजमुखी अंधेरे के, दिलो दानिश, जिंदगीनामा, हम हशमत, मित्रो मरजानी, बादलों के घेरे से आगे 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' तक आते है तो ज्ञात होता है कि कृष्णा जी की साहित्य कल्पना का प्रतिफल नहीं है अपिन्तु ठोस ज़मीनी ऊँचाईयों का रूपांतरण है।

विभाजन की त्रासदी पहले केवल पंजाब लाहौर के क्षेत्रों तक सीमित रही, उसके प्रभाव को अन्य क्षेत्रों में देखने की कोशिश बहुत कम हुई थी।साहित्य का एक लंबा दौर विभाजन की उस त्रासदी को उजागर करता है। जिसमें भीष्म साहनी के 'तमस' और अमृता प्रीतम रचित 'पिंजर' रेखांकित किया जा रहा है। यशपाल के दो भागों में लिखे 'झूठा सच' के अलावा भीष्म साहनी की कहानी 'अमृतसर आ गया' और कृष्णा सोबती की 'सिक्का बदल गया' जैसी रचनाएँ इस कडुवे यथार्थ को समझने में मील का पत्थर बनी हैं।

स्वतंत्र भारत के द्वितीय गवर्नर जनरल सी राजगोपालाचारी ने अपने भाषण में यह व्यक्त किया था कि हम उम्मीद करते हैं कि उस साल की भयावह त्रासदी सदा के लिए इतिहास के बियाबान में खो जाएगी, और वर्तमान में भावनाओं को भड़काने का काम नहीं करेगी।'[2]

लेकिन रक्तरंजित इतिहास के उस क्रूर अध्याय को क्यों याद करे और कैसे उसे भूल जाए? सतियों बाद देश मे अवतरित होने वाली आज़ादी हर हिंदुस्तानी के दिलों में धड़कती रहती थी। लेकिन उस उमगती विरासत को कुछ

राजनीतिक शक्त्यिों ने विभाजित कर देश का एक नया भूगोल एक नया इतिहास बना दिया।

इतिहासकार रामचंद्र गुहा ने भारत पाकिस्तान विभाजन को ऐतिहासिक रूप से विश्लेषित कर लिखा है 'महाभारत लिखे जाने के कई हजार साल बाद कुरु क्षेत्र फिर से एक बार एक दूसरी लड़ाई के पीड़ितों का अस्थाई केंद्र बन गया। यह लड़ाई पांडवों और कौरवों जैसे दो संबंधियों के बजाय अन्य दो संबंधियों भारत और पाकिस्तान के बीच लड़ी गई।'[3]

भारत के इतिहास में स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ हुए भारत-पाकिस्तान विभाजन ऐसी दुखद घटना है जिससे लाखों लोग अपनी जमीन से विस्थापित हो गए थे। सांप्रदायिक दंगों के ख़ौफ़ से बचने के लिए विभाजन और विस्थापन को स्वीकार कर लिया गया था।लेकिन विभाजन के साथ ही अमानवीय कृत्यों का न खत्म होने वाला सिलसिला शुरू हो गया। दंगे फसाद से उठी दशहत से लोग दोनों तरफ भाग रहे थे। लोगों के मन में गहरे असुरक्षा का भाव पैदा हो गया था।उन्हें ऐसा एहसास होने लगा कि अब अपना घर बार छोड़कर हमेशा के लिए यहाँ से जाना होगा। नरेंद्र मोहन इस तरह लिखते हैं 'विभाजन स्थूल और भौतिक रूप में ही एक दुर्घटना नहीं थी।यह एक मानवीय ट्रेजेडी है। जिसने लाखों लोगों को भावात्मक, विचारात्मक, मनोवैज्ञानिक, मानसिक और आर्थिक स्तरों पर प्रभावित किया था। यह दुर्घटना केवल राजनीतिक नहीं था। किसी एक वर्ग विशेष से जुड़ी हुई नहीं थी, बल्कि लाखों करोड़ों लोगों की ज़िंदगी उनका वर्तमान और भविष्य उनकी सभ्यता और संस्कृति उनका आचरण और व्यवहार भी जुड़ा हुआ था।'[4]

मनुष्य जीवन की सबसे त्रासद स्थिति है विस्थापित होना। यदि सामान्य शब्दों में व्यक्तकरें तो मूल से उखड़कर दूसरी जगह जाना ही विस्थापन है। लेकिन इस व्यापक प्रक्रिया को शब्दबद्ध कर परिभाषित करना आसान नहीं है। विस्थापन कई कारणों से हो सकते हैं। कृष्णा सोबती द्वारा रचित 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' में विभाजन और उससे उत्पन्न विस्थापन का चित्रण किया गया है, जो हमारे भारतीय इतिहास को भी बदलने वाली घटना थी।इसका साहित्यिक महत्व इसलिए है कि आज भी उस गलत फैसले से जनता जूझ रही है। इस कड़वे यथार्थ को लेखिका अपने शब्दों में यूँ व्यक्तकरती है कि' विभाजन एक शब्द शरणार्थी एक विशेषण। टूटा फूटा गरीब। कैम्पों में रहने वाले विस्थापितों को राशन मुफ्त मिल सकता है। फार्म भरे हो तो कम्पल के भी हकदार हो सकते हैं। वह क्यों इस पर सोच रही है? इसका बुरा मनाया जा सकता है ना सराहा जा सकता है।यह तो एक स्तिथि है।जड़ से उखाड़ने की,नई जगहों पर जमने की।"[5]

जब अहमदाबाद में उसकी मुलाकात प्रकाश मौसी से होती है तब दोनों विभाजन के दौरान के शरणार्थी कैंपों की स्थिति को याद करते हुए नेहरू, गाँधी और जिन्ना को कोसते हुए कहती है- "अरे खलकत को बचाने के लिए तुम्हारे पास पुलिस-फौज नहीं थी तो क्यों बटवारा माना था। बापू गाँधी तुम चुप क्यों हो जिस नेहरू को तुम अपना पुत्र बनाया, उससे अपना हुक्म क्यों न मनवाया।"[6] मुसलमानों के प्रति एक हिकारत का भाव प्रकाश मौसी में झलकता है।लेखिका जब गरारा पहनकर उसके पास पहुँचती है तो वह कहती है कि "यह एक हिंदू रियासत है। बंटवारे के बाद हम भी क्यों पहने उनकी पेशाकें।"[7]

विस्थापित होने का दर्द लेखिका का अपना है। इसलिए सिरोही पहुँचने के बाद भी वह अकेलेपन, संत्रास,खामोश तमन्नाओं से घेरे हुए हैं।वह हर शहर में अपनी मिट्टी की सुगंध को सूँघती है। खोई स्मृतियों में लपेटकर अपने को कमजोर महसूस करती है।वह सोचती है 'क्या फैसला करने की इच्छा कमजोर पड़ गई है ,या स्थितियों को समझने की दूरअंदेशी।"[8]

'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' स्त्रीवादी ,विमर्श वादी तर्कों से परे पाठक को पुनः स्वाधीनता के दौर की अनिश्चितता में ले जाती है, जब लोगों के मन में हिंदुस्तान-पाकिस्तान की तस्वीर नहीं थी। यह उपन्यास स्वाधीनता के बाद की सामंती आभिजात्य, ऱ्ढ/ङ्व्थ्, और नए लोकतांत्रिक-राजनीतिक मूल्यों पर अपना नियंत्रण बनाए रखने वालों की

कोशिशों को भी प्रस्तुत करती है। रियासत के पहरेदारों में खलबली, तनाव और अफरातफरी का माहौल था। सिरोही रियासत के अंतिम समय के बारे में जिक्र करते हुए वे लिखती हैं : 'जयसिंह साहिब को जैसे कर्नल साहिब की ओर से चुपके से कुछ कहा गया हो।कलाई पर घड़ी देखी और गवर्नेस से मुखातिब हुए - घुड़सवारी का समय हो गया है।"[9] सत्ता के परिवर्तन को कई व्यंग्य बाणों से भी प्रस्तुत करती है।'तिरंगी झंड़ियां लहरा रही थी।महाराज और महारानी के सामने झुक झुक जानेवाले सिरों पर गाँधी टोपियाँ चमक रही थी।"[10]

लेखिका इस सच्चाई की ओर नई पीढ़ी को ले जाना चाहती तो है कि जहाँ सियासी राजनीति के फल स्वरूप एक भूखंड बांटा गया ,जिसमें लोगों की पहचान और उनका वजूद था।जिनके लिए देश का मतलब था 'भरपूर फसल वाले खेत, सदा हरी वाली धरती, ना कमी पानी की ना छाव की।"[11] इस तरह सियासी बंटवारे में देश का सामाजिक ढांचा ही बदल गया। कृष्णा सोबती के शब्दों में 'जो उपर था वह नीचे आ गया जो नीचे था उधर पछाड़ दिया गया। अब हम सब उस सीमांत के बाहर है और सीमांत हमारे बाहर है।"[12]

उपन्यास में लेखिका जिस गुजरात का जिक्र किया है वह हिंदुस्तान का गुजरात है। विभाजन में एक हिस्सा पाकिस्तान चला गया वह लेखिका का असली देश था। और अब हिंदुस्तान के गुजरात में वह नौकरी करने के लिए शरणार्थी बनकर आई थी वह एक पिछड़ी रियासत का हिस्सा है। बंटवारे के दौरान अपने जन्म स्थान गुजरात और लाहौर को यह कहकर कि 'बहती हवाओं, याद रखना, हम यहाँ रह गए हैं।"[13] इस प्रकार उनकी स्मृति को संभालती कृष्णा अपनी पहली नौकरी करने सिरोही पहुँच गयी। जहाँ उन्हें अपने स्वतंत्र देश का नागरिक होने का अहसास हुआ और व्यक्ति के आत्मसम्मान को देखने परखने का मौका मिला, और मिले सिरोही रियासत की अंतिम कड़ी दत्तक पुत्र महाराज तेज सिंह। एक बच्चा जो भारत के अतीत वर्तमान और भविष्य के बीच सहसा खड़ा अपनी शिक्षिका से पूछ रहा था' मैम, बेदखल का मतलब क्या होता है?"[14] कृष्णा तेज सिंह को नए तौर-तरीके सिखाना चाहती है पर क्या वह सीख पाती है? इस लहु लुहान विरासत में दो प्रकार के द्वंद्व देख सकते हैं।एक तो पुराने रुबाब और रियासत को त्यागना नहीं चाहते तो दूसरी ओर बेदखल होने का जख्म। बेदखल होने का अर्थ सबके लिए अलग होता है।

विस्थापन की तीव्रता को व्यक्त करते हुए लेखिका लिखती है "अब हम सब उस सीमांत के बाहर है और वह सीमांत हमारे बाहर।"[15] यह सीमांत जो है वह राष्ट्रवाद और देश प्रेम के सीमांत है। जिसने निम्न तबके के लोगों को तहस-नहस कर दिया।

दंगे और रक्तपात की तरह एक भयावह सच्चाई है शरणार्थी बनकर जीना। क्योंकि वे अपने देश से उखाड़ दिए गए हैं। लेखिका के जीवन का बड़ा हिस्सा इस तरह के अनुभवों से जुड़े हुए हैं। इसीलिए इस कृति का नजदीकी संबंध उस शख्सियत से है जिसे हम कृष्णा सोबती के नाम से जानते हैं। पाठक सबकुछ कृष्णा नाम की पात्र से अनुभव करता है। उर्वशी बुटालिया ने कृष्णा सोबती और अमृता प्रीतम को उन रचनाकारों में गिना जिन्होंने विभाजन को बहुत गहराई के साथ जाना। उनका कहना है कि "Amrita Pritam and Krishna Sobti, both from the first generation of partition survivors."[16] विभाजन में हाशिए पर पड़े बेबस लोगों की चीख चिल्लाहट धीरे मौन में तब्दील हो गई है।इससे लेखिका एक गुमशुदा स्त्री पात्र को गठती है जो सारे जोखिम उठाने के खतरे का सामना करना चाहती है।

हिंदी में विरले लेखक है जो गद्य और पद्य दोनों को एकसाथ आत्मसात करके रचनाकर्म में मुग्ध हुए हैं। कृष्णा सोबती उनमें एक है।गद्य में पद्य बुनने की कला उनकी पूर्ववर्ती रचनाओं में भी सुलभ है। उस समय शेरों शायरी, कविता, ग़ज़ल, हीर, आदि राज महलो के अभिन्न अंग थे। महफ़िल को खूब सजाने के लिए कृष्णा जी गीतों का सहारा

लेती हैं जो कभी कथानक के साथ रमकर पाठक के मन को लालायित करती है।

'आज के बिछुडे न जाने कब मिलेंगे/आज से हम तुम गिनेंगे एक ही नभ के सितारे/दूर होगे हम सदा को ज्यों/ नदी के दो किनारे /सिंधु तट पर भी ना जो दो मिल सकेंगे/ आज के बिछुड़े ना जाने कब मिलेंगे।"[17]

इस उपन्यास को कृष्णा सोबती ने आत्मकथात्मक शैली में लिखा है।इसे पूर्णतः आत्मकथा कहना मुश्किल है। क्योंकि आत्मकथाओं का कैंवास ज्यादा बड़ा होता है जबकि यह बहुत छोटे समय की कहानी है। मगर ये संस्मरण भी नहीं कह सकती क्योंकि संस्मरण में इतनी सारी बातें एक साथ नहीं समेट सकतीं। अतः आत्मकथात्मक शैली में लिखा उपन्यास कह सकते है। क्योंकि कृष्णा सोबती और अन्य वास्तविक चरित्रों की उपस्थिति के बावजूद भी इसकी मूल बुनावट और इसका आस्वाद बिल्कुल औपन्यासिक है। बीच बीच में डायरी शैली का प्रयोग भी इस कृति को बेजोड़ बनाती है।

उपसंहार

गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान में विस्थापन की भीषण माहौल को विभिन्न आयामों में प्रस्तुत किया गया है। चुपीती आँखों,घनीली आंखों, रेतीली खुश्क आंखों, गट्टी आवाज़ जैसे अनोखे शब्दों से कृष्णा सोबती पूरे उपन्यास में अपने खूबसूरत उपस्थिति महसूस कराती हैं। लेकिन यह चमकीले शब्द मिलाकर पूरे उपन्यास में कोई चमत्कारी प्रभाव नहीं पैदा करती फिर भी पाठक के अन्तकरण को असरदार ढंग से छूते है। पिछले कुछ दशकों से राष्ट्र, राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता जैसी अवधारणाओं पर चिंतन करते हुए विभाजन को देखने परखने और समझने की एक उत्तर आधुनिक दृष्टि विकसित हुई है। समकालीन संदर्भ में विस्थापन के नए किस्म देख सकते है। जिसका आंतरिक और बाहरिक कई कारण भी हो सकते हैं। लेखिका का मकसद इस हकीकत से पाठक को रुबरु कराना है कि वर्तमान समाज में विभाजन रेखाएँ खत्म होने के बावजूद अधिक स्पष्ट दिखाई देता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 नया ज्ञानोदय, दिसंबर 2017,पृ .14

2 रामचंद्र गुहा, भारत गांधी के बाद,पृ.104

3 रामचंद्र गुहा, भारत गांधी के बाद,पृ.105

4 नरेंद्र मोहन,समकालीन कहानी की पहचान, पृ.109

5 कृष्णा सोबती,गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान,पृ.42

6 वही, पृ.120

7 वही, पृ.127

8 वही, पृ.56

9 वही,पृ.79

10 वही, पृ.79

11 वही,पृ.31

12 वही, पृ.31

13 वही, पृ.100

14 वही, पृ.252

15 वही, पृ.31

16 उर्वशी बुटालिया, द अथर साइड ऑफ साइलेंट्स, पृ.14

17 गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान, पृ.114

शोधार्थी, केरल विश्वविद्यालय

हिन्दी विभाग, तिरुवनंतपुरम

ई मेल :himamnarendran@gmail.com

नारी विद्रोह एवं स्त्री चेतना - 'कठगुलाब' के संदर्भ में

डॉ. प्रिया रानी.पी.एस

आज, संसार की सभी साहित्यिक विधाओं में उपन्यास का अपना एक विशेष महत्व है। वह केवल मनोरंजन की एक विधा नहीं है, अपितु वह युग की जटिलताओं को मुखरित करती है। उसकी अपनी शक्तिहै। वह मनुष्य, परिवार, समाज के अनेक प्रकार की बुराइयों को चित्रित कर, नई चेतना की ओर प्रेरित करती है। उसमें मानव - जीवन की अनेक व्याख्याएँ मिलती हैं। जीवन की यथार्थता के साथ उज्ज्वल भविष्य की ओर दिशा निर्देश करती है। क्योंकि वास्तविक जगत से उपन्यास का गहरा संबंध होता है। उपन्यास में मानव की समस्याओं को गहराई के साथ चित्रित किया जाता है। हिंदी उपन्यास जगत की एक लंबी यात्रा है। इस यात्रा के दौरान हिंदी उपन्यास को युगानुरूप अनेक मोड़ लेना पड़ा है। इस विधा में नारी उपन्यासकारों का स्थान महत्वपूर्ण है।

हिंदी की नारीवादी लेखिकाओं में विशिष्ट स्थान की अधिकारिणी मृदुला गर्ग कृत 'कठगुलाब' उपन्यास सन् 1996 ईस्वी में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में लेखिका ने नारीवाद की नई परिभाषा गढ़ने का प्रयास किया है। उपन्यास में विभिन्न स्तरों पर लेखिका ने स्त्री - पुरुष संबंध को समझने, व्याख्यायित तथा विश्लेषित करने का प्रयास किया है।

लेखन को उच्छेदक कर्म मानने वाली लेखिका मृदुला गर्ग ने इस उपन्यास में प्रचलित मान्यताओं को नकारकर नयी व्यवस्था बनाने का प्रयत्न किया है। बीसवीं शताब्दी के अंत में वैश्वीकरण और यंत्रीकरण के प्रभाव से मनुष्य की भावभूमि बजर होती जा रही है। इस खतरे से परिचित कराने के लिए लेखिका ने यह उपन्यास लिखा है। इस उपन्यास के केंद्र में नारी है। नारी को उसर करती जा रही आत्मघाती सामाजिक व्यवस्था से परिचित करना लेखिका का प्रयोजन है । इस उपन्यास पर नारीवादी, फेमिनिस्ट, पुरुष प्रधानता- विरोधी होने के आरोप लगाये गये है पर यह उपन्यास फेमिनिस्ट निष्कर्ष के विरुद्ध एक सजग मोर्चा है।[1]

इस उपन्यास में जीवन की विसंगतियाँ पाठकों के समक्ष आती हैं। लेखिका ने अपने अनुभव, अपने ज्ञान और तर्क के आधार पर संगत और असंगत तत्त्वों को पकड़कर समय और समाज को पहचानने का प्रयास किया है। उपन्यास की कथावस्तु पाँच भागों में विभाजित हैं - स्मिता, मारियान, नर्मदा, असीमा और विपिन। इन नारियों से लेखिका ने आधुनिक नारी की वास्तविक स्थिति पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। इस उपन्यास द्वारा लेखिका चाहती है कि भारतीय नारी शोषण का शिकार न हों, बलात्कार का शिकार न हों, उसे पीड़ित न करें तथा अन्य लोग उसे धोखा न दें। उन्होंने यह बतलाने का प्रयास किया है कि आधुनिक नारी शिक्षित होकर व्यक्तित्त्व सम्पन्न और आत्मनिर्भर हो गई है। इसलिए उसकी अपेक्षाएँ बदल गई हैं। वह परम्परागत शृंखलाओं की संकीर्णताओं से मुक्त होकर पुरुष से हर क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा करने लगी है।

स्मिता इस उपन्यास की नायिका है। बीस साल अमरीका में रहकर भारत लौट आई है। पहले उसके ही जीजा ने बलात्कार किया था। बी.एस सी पास करने के बाद बहन नमिता उसकी शादी करना चाहती है। स्मिता उसके लिए राजी नहीं होती और कहती है -"मैं शादी नहीं करना चाहती। न अधेड़ से, न जवान से, मैं पढना चाहती हूँ।"[2] फिर अमरीकन मनोचिकित्सक जिम जारविस से शादी करती है। जिम मनोरोगी था, स्मिता उससे तलाक लेती है। फिर मारियान से स्मिता की मुलाकात 'राँ' के आँफिस में होती है। उपन्यास लिखने की प्रतिभा मारियान के पास है। पति उसकी औपन्यासिक प्रतिभा का इस्तेमाल करते हुए उसे फँसाता है। उससे तलाक लेकर गैरी कपूर से दूसरा विवाह करती है। मारियान को बच्चा हो नहीं पाता और कानूनन गैर की इजाजत के बगैर वह बच्चा गोद नहीं ले सकती।

इस उपन्यास की चरित्र नर्मदा अशिक्षित, गँवार एवं गरीब है। उसकी बड़ी बहन गंगा ने उसे धोखा देकर स्वंय अपने ही पति के साथ उसका विवाह कर दिया। वह काँच की चूड़ियाँ बनाने के कारखाने में काम करती थी। वहाँ का मालिक उसे मारते था और पति भी उसको मारता था। पढ़ें लिखे परिवारों के समर्पक में आकर शिक्षित होकर खुद आत्मनिर्भर बन जाती है तब तक उसका आधा जीवन बीत जाता है। स्मिता एवं मारियान की तरह उसमें बदला लेने की भावना नहीं है। असीमा इस उपन्यास की चौथी नारी है। वह एक आत्मनिर्भर धाकट लड़की थी। उसके पिता उसकी माँ के साथ अत्याचार करता था। वह अपने पिता एवं भाई को हरामी मानने लगी । इसी कारण वह कराटे सीखकर पुरुषों का विरोध करती है और शोषण करने वाले पुरुषों को खुद सजा देती है । इस उपन्यास में एक मात्र पुरुष जो हरामी नहीं वह विपिन है। माँ की दुख भरी जिंदगी देखकर वैवाहिक जीवन से विरक्त हुआ है। इस उपन्यास से पता चलता है कि कठगुलाब की नायिकाएँ नारी स्वतंत्रता की पक्षधर हैं ।

बलात्कारित होकर भी स्मिता में अपराध - बोध नहीं है। मारियान ने जिंदगी से हार नहीं मानी और वह सफल उपन्यास लेखिका बनकर रहती है । नर्मदा का व्यक्तित्त्व जुझारु है। वह अपना मार्ग दूँढ ही लेती है। नमिता और गंगा पति की चोट सहकर भी अपना पत्नी धर्म निभाती जा रही हैं। नमिता ने तो अपने पति से बदला लिया पर गंगा सिवाय सहने के कुछ नहीं करती। दर्जिन बीबी स्वाभिमानी स्त्री है। उसके पति ने उसे छोड दूसरे के साथ घर किया तो स्वाभिमानी दर्जिन बीबी ने पति से पैसे लेना भी इनकार किया और सिलाई का कारखाना खडा किया। इस उपन्यास के अधिकत्तर पुरुष पात्र शोषक, हिंसक, पीडा देने वाले है, वे देशी हों या विदेशी अजिमा की नजरों में सभी मर्द जान हरामी हैं ।

उपन्यास की भाषा पात्रों की मानसिक उथल - पुथल को तथा परिवेश को जीवंत बनाती है। काम में हर्ज किये बिना ऑसुओं के नमक में, धरती की ताकत बख्शनेवाले ममत्व ढूँढ लिया।"[3] उपन्यास की कथावस्तु भारत एंव अमरीका में घटित होती है । भारत में स्त्रियों की स्थिति, बाल - मजदूरी के प्रश्न, स्त्री पुरुष संबंधों पर लेखिका ने प्रकाश डाला है। अमेरिका में भी भारतीय स्त्रियों की दशा किस प्रकार है उसे लेखिका ने स्पष्ट किया है।

उपन्यास का शीर्षक 'कठगुलाब' उपन्यास के अंतः सूत्र को पकड़ने वाला है । 'कठगुलाब' भूरे रंग के काठ में तराशा गुलाब है। इसके बीज बडे सख्त होते हैं, जो नायिकाओं के स्वभाव के प्रतीक है। कठगुलाब की नायिका नारी स्वतंत्रता की पक्षधर है। संकीर्णताओं से मुक्त होकर पुरु ष के अत्याचारों से अपने - आपको बचाना चाहती हो। वे अपने आत्मसम्मान एवं आत्मगौरव के प्रति सचेत हो गई है और किसी भी स्थिति में उसे खोना नहीं चाहती है। इस उपन्यास में लेखिका ने नारी के बदलते रूप को प्रस्तुत करने का प्रयास करने के साथ - साथ और स्त्री पुरुष सम्बन्धों को केन्द्र बिन्दु बनाकर समाज की विभिन्न समस्याओं को विश्लेषित करने का यत्न किया है।

संदर्भ

1. मृदुला गर्ग का व्यक्तित्त्व एवं कृतित्व, डॉ. रमा नवल, विकास प्रकाशन,कानपुर
2. चकते नहीं सवाल - मृदुला गर्ग - पृ 155
3. हंस - सिंतबर - पृ 91
4. मृदुला गर्ग, कठगुलाब, पृ.सं 95
5. वही, पृ . सं 99

फैकल्टी, केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय
कैपिटल सेन्टर , तिरुवनंतपुरम

'गोल गोल घूमती एक नाँव'में परिवेश अंकन

डॉ. लालीमोल वर्गीस.पी

किरण अग्रवाल समकालीन कविता के उन प्रवर्तकों में से हैं जिन्होंने हमारे समाज की यथार्थ समस्याओं और युग की पीड़ा को अपनी कविताओं का प्रतिपाद्य स्वीकार किया है। 'गोल गोल घूमती एक नाँव 'उनका पहला काव्य संग्रह है । इस संकलन की सभी कविताओं में स्वाभाविकता के साथ उन्नति भी है। किरण जी अपने आसपास की अनुभूतियों को अपनी कविता का विषय बनाती हैं। दरअसल इनमें अनुभूतियाँ कहीं से उधार ली हुई नहीं है, बल्कि अपनी है । एकदम अपने सिद्धांतों और वादों से बाहर निकलकर भीड़ से बिल्कुल अलग कविता करने की चाह उनकी कविताओं की विशिष्टता है। शायद इसलिए कि वे लिखती हैं -' मैं चाहती थी तुमसे / कहीं अकेले में मिलना / किसी समंदर के किनारे/ जैसा कि अक्सर/ तुम्हारे उपन्यासों में/ होता था वहीं रेत में बैठ जाना/ आमने-सामने / एक टक निहारना तुम्हें /और भूल जाना /वे सारी बातें / जो मुझे तुमसे पूछनी थी।

'गोल गोल घूमती एक नाँव'काव्य संकलन की पहली कविता है 'चीख'।वास्तव में यह चीख सिर्फ कवयित्री की नहीं है,बल्कि पूरे समाज की है। विशेषकर स्त्रियों की है। वे स्त्रियों के खिलाफ हो रहे अत्याचारों, विद्रोहों और अपमानों को खुले रूप से प्रतिशोध करती हैं। महानगरीय जीवन कितना जटिल है, तनावपूर्ण है, इसका वर्णन उन्होंने अपनी कविताओं में किया है। महानगरीय मानव पूर्णतया स्वार्थमय हो गया है, जिसके कारण वह सिर्फ अपने बारे में सोचता है, अपने स्वार्थ को पूर्ण करने के लिए वह दूसरों की चिंता नहीं करता है। वह अपने स्वार्थमय जीवन में लीन हो जाता है। यहाँ किरण जी की चीख दूर तक सुनी जा सकती है- मैंने पूछा किसकी क़ब्र है यह? 'वह बोला दिल्ली की'।/ और तब मुझे याद आया/ कुतुब मीनार दिल्ली में थी/ एक बार पहले भी आई थी मैं यहाँ..।

महानगरीय जीवन में संवेदनाओं का कोई स्थान नहीं है, दूसरों के दुख दर्द से कोई सरोकार नहीं और किसी की पीड़ा से कोई वास्ता। बल्कि पीड़ित की संवेदनाओं को कुचल देना, रौंद कर रख देना यहाँ के लोगों की आदत बन गई है। 'उस व्यक्ति ने / सिर से पाँव तक मेरा जायजा लिया/... साली ! पागल है!/वह मुँह ही मुँह में बुदबुदाया / और आगे बढ़ गया...। यहाँ महानगरीय जीवन की व्यस्तता, हलचल, पागलपन और अजनबीपन को चित्रित करने का प्रयास कविता में दृष्टि गोचर होता है।

कवयित्री ने भीड़ को अपने जीवन का हिस्सा मान लिया है। उन्हें मालूम है वे इस भीड़ से अलग जा भी तो नहीं सकती। उसे इसी भीड़ में जीना है। अपने दर्द को भूलकर -'अपनी दर्दनाक चीख /भूल चुकी थी मैं /अब सही मायनों में जीने लगी थी मैं। 'महानगरीय जीवन एक अनंत भीड़ बन गया है जिसमें वे फँसी हुई हैं।

किरण अग्रवाल का सफर छोटा नहीं है। वे एक लंबे अरसे से सफर कर रही हैं। लेकिन वह चाहे जहाँ भी जाए खुद को सहज नहीं कर पाती है। उन्होंने सुंदर सा सपना देखा था। वह सुंदर सा सपना बदसूरत हकीकत में तब्दील हो गया था। -" एक बार पहुँच गयी मैं / किसी पॉश कॉलोनी में / वहाँ खुले- खुले मकान थे/ उन मकानों में बड़े-बड़े बेडरूम थे, उन बेडरूम में खूबसूरत डबल बेड थे। / जैसा कि मैंने अक्सर सपनों में देखा था। वहाँ प्रेम भी / बड़े एटीकेट से किया जाता था / इन घरों के नीचे ही भिनक रहा था एक घोर नरक/ बदबूदार/.... सपनों के शहर से डर लगा और अपने आप से नफरत हुई।

किरण अग्रवाल की कविताओं में नारेबाजी नहीं है। उनकी कविता क्रांति करने की भी गुहार नहीं लगती। किरण की तो बस छोटी सी अभिलाषा है। वे प्रयोगवादी कवि की तरह' नदी के द्वीप 'भी बनना नहीं चाहती - मैं नहीं चाहती बनना / नदी का एक द्वीप / या रेत का टीला / नदी से कटा हुआ / मैं चाहती हूँ नदी में डूबना / और उतरना / गहराई में जाना/ छूना तल को / अंगुलियों से महसूसना / हर अनगढ़ पत्थर को / हरी -हरी काई पर / फिसलना चाहती हूँ...../ मैं जीवन को छूना चाहती हूँ / मैं जीवन बन जाना चाहती हूँ।

आज की कविता अपने सबसे जटिल दौर से गुज़र रही है। इसमें संदेह नहीं कि हमारा समाज नाना रूढ़ियों और विषमताओं से ग्रस्त रहा है। इनसे न केवल हमारा व्यक्तित्व और भीतरी अहं घायल होता है वरन प्रगति के बढ़ते चरण भी अवरुद्ध हो जाते हैं। इतने जटिल समय में किरण की कविताएँ जीवन की समग्रता को समेटने में सफल हुई हैं। वे अपनी चाह को किसी के उपर थोपना नहीं चाहती हैं । ऐसा लगता है मानो इसी चाह ने कवयित्री का सृजन भी किया है। यथार्थ को बहुत ही सहजता के साथ साथ किरण ने अपनी कविताओं में प्रस्तुत किया है और यही सहजता उनकी कविता की सार्थकता भी है- "अगर मैं तुमसे कहूँ / कि मैं एक नया आसमान बनाऊँगी / एक नई धरती/ तो तुम हँसोगे शायद / तुम हँस /सकते हो/ क्योंकि हर कोई हँस सकता है / हालांकि बहुत से लोग हैं,/ जो हँसी का इस्तेमाल महज एक पेर्फ्यूम की तरह करते हैं/ मुखौटा एक/ मैं ऐसी धरती बनाऊँगी / जहाँ मुखौटे का प्रयोग न करना पड़े/ तुम हंसो तो अंदर से खिले हँसी / फूलों की तरह"।

कवयित्री का मन समाज में फैले हुए सब प्रकार के अन्यायों और ढोंगों से दुखी है। वे एक ऐसे समाज की परिकल्पना करती हैं जिसमें हर मानव ईमानदारी के साथ समाज के सुख- दुख को अपने सुख -दुख के समान मानता हो। यह ऐसा समाज है जिसमें शोषण और भेदभाव नहीं है', स्वार्थ-परायणता और अन्याय का स्थान नहीं।

कवयित्री ने अपने आसपास के हर अनछुए और अनकहे पहलू को बारीकी से उभारा है। उनकी कविता की भाषा इतनी सहज है कि कहीं भी परायापन महसूस नहीं होता है। ऐसा लगता है मानो सब कुछ अपने आस -पास ही घट रहा हो। कविता संग्रह की अत्यंत ही महत्वपूर्ण कविता है 'गोल गोल घूमती एक नाँव'। वे इस जीवन रूपी नाँव पर सवार होकर आगे चले जाना चाहती हैं। दूसरों का दुख भी उनसे सहा नहीं जाता। "तुम जो झुके खड़े हो मेरे सामने / डबडबाई आँखों से मुझे ताकते / तुम्हारा दुख/ मेरे किनारों से टकराकर / मुझे भिगो -भिगो देता है/ मैं ठिठक गयी हूँ....।"

कवित्री जिस वक्तका इंतजार कर रही थी लगता है वह वक्तआ गया है। इस भागम-भाग की दुनिया से वे बहुत थक चुकी हैं। -वक्त आ गया है / कि मैं तुमसे अलविदा करूँ / और अपने को लहरों के हवाले कर दूँ /बहुत दौड़ ली..... बहुत भाग ली /थक गयी हूँ /सोना चाहती हूँ ।

किरण अग्रवाल की कविता के विषय में भारत भारद्वाज ने ठीक ही लिखा है 'उनकी कविता की यह विशेषता है कि आज लिखी जा रही कविता से अलग हमारे समय का एक नया स्वर सामने लाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि किरण अग्रवाल की कविताएँ हिंदी जगत में अपनी एक खास जगह बनाएँगी।

सन्दर्भ ग्रंथ :

किरण अग्रवाल,गोल गोल घूमती एक नाँव, प्रकाशन संस्थान,4715/21, दयानन्द मार्ग, दरियागंज,नई दिल्ली।

असोसियेट प्रोफसर, हिंदी विभाग
सरकारी कॉलेज, त्रिपूणित्तुरा

संतमत एवं शांति का मार्ग

डॉ. प्रिय रंजन

सारांश

आज पूरा विश्व शांति की खोज में है। आज भौतिकवाद, आधुनिकीकरण और भूमंडलीकरण के दौर में हमारे पास सभी भौतिक संसाधन प्राप्त हैं। सुख एवं आराम के सभी साजो-सामान प्राप्त हैं। इसके बावजूद भी हमें शांति उपलब्ध नहीं है। हम शांति पाने के लिए बाहर की दुनिया में अथक प्रयास करते हैं और अभी भी कर रहें हैं। इसके बावजूद भी हमारा मन अशांत है क्योंकि हमारा मन स्थिर नहीं है। संतों का कहना है कि शांति के लिए हमें बाहर नहीं भटक कर अपने अन्दर में प्रयास करना होगा। संतों के मत को संतमत कहते हैं। प्रस्तुत आलेख शांति के मार्ग में संतमत की उपयोगिता का अवलोकन करेगा।

शब्द संकेतः शांति, संतमत, भौतिकवाद, आवागमन

संसार के जितने भी प्राणी हैं, सभी सुख-शान्ति की खोज में हैं और इसके लिए प्रयत्न भी करते हैं; लेकिन अनेक प्रयत्न करने के बाद भी पूर्ण रूप से सुख-शान्ति की प्राप्ति नहीं होती है। इतने सारे वैज्ञानिक अनुसंधान एवं सुख के साधन की वृद्धि होने पर भी हमारा मन शांत नहीं है। इस संसार में जो भी सुख है, वह क्षणिक सुख है। भला इस क्षणिक सुख से शान्ति की प्राप्ति कैसे होगी और जबतक हमें शान्ति प्राप्त नहीं होगी, तब तक हम पूर्ण सुखी नहीं हो सकते है। सबसे पहले हमें जानना चाहिए कि शान्ति क्या है? संतमत के प्रचारक महर्षि परमहंस जी महाराज की वाणी है- शान्ति स्थिरता या निश्चलता को कहते है (महर्षि में हीं, 2008: 07)। इनका मानना है कि शांति प्राप्त करने की प्रेरणा मनुष्यों के हृदय में स्वाभाविक ही है। प्राचीन काल में ऋषियों ने इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर इसकी पूरी खोज की और इसकी प्राप्ति के विचारों को उपनिषदों में वर्णन किया। इन्हीं विचारों से मिलते हुए विचारों को कबीर साहब और गुरु नानक साहब आदि संतों ने भी भारती (हिंदी) और पंजाबी आदि भाषाओं में सर्वसाधारण के उपकारार्थ वर्णन किया, इन विचारों को ही संतमत कहते हैं। दुखों से छूटने और परम शांतिदायक सुख को प्राप्त करने के लिए जीवों के हृदय में स्वाभाविक प्रेरणा है। इस प्रेरणा के अनुकूल सुख को प्राप्त करा देने में संतमत की उपयोगिता है। कहने का तात्पर्य यह है की शांति प्राप्त करने के विचार में हमारे आर्षग्रंथ और संतमत एकमत है।

उनके उपदेश में आया है कि शांति प्रप्ति हेतु हमें संपूर्ण इन्द्रियों से छूटना होगा। संपूर्ण इन्द्रियों से छूटने के लिए संतों के कहने के अनुसार हमें योग करना होगा। योग क्या है? योग अर्थात् जुड़ना, मिलना, किससे जुड़ना, किससे मिलना, कैसे मिलना? योग का अर्थ जीवात्मा का परमात्मा में मिलने से है। जब तक हम परम प्रभु परमात्मा से मिल नहीं जायेंगे, तबतक हमें शांति की प्राप्ति नहीं होगी। महर्षि मेंहीं परमहंस जी महाराज की वाणी है-

कोई न स्थिर सबहीं बटोही। सत्य शान्ति एक स्थिर वोही?

शान्तिरूप सर्वेश्वर जानो। शब्दातीत कहि संत बखानो? (महर्षि मेंहीं, 2008:44)

अतः शान्तिस्वरूप परमात्मा को पाये बिना हमें शान्ति नहीं मिल सकती है अर्थात हमारा परम कल्याण या आत्मकल्याण नहीं हो सकता है। अब प्रश्न उदित होता है कि हम परमात्मा को कैसे प्राप्त करेंगे? जिनके बारे में हमें ठीक-ठीक पता नहीं है, उनसे कैसे मिल सकते हैं? यदि हमें परमात्मा का वास्तविक ज्ञान चाहिए, तो इसके लिए हमें संत सतगुरु की शरण में जाना पड़ेगा। वास्तव में सदगुरु परम प्रभु परमात्मा का सगुण साकार रूप होते हैं। जब हम संत सदगुरु की शरण में चले जाएँगे, तो परमात्मा में विराजने वाली शान्ति को प्राप्त करने का हमारा मार्ग प्रशस्त हो जाएगा। अतः यदि हम अपना आत्मकल्याण चाहते हैं, तो सदगुरु की शरण में जायें और उनसे योग की युक्ति सीखकर ध्यान एवं सग करें। सबसे पहले गुरु हमें ईश्वर की स्थिति को दृढ़ता से बोध कराते हैं तथा वे यह भी बताते हैं कि ईश्वर की प्राप्ति अपने अंदर में होगी बाहर नहीं।

इसके साथ-साथ वे हमें गुरु-भक्ति अर्थात् गुरु सेवा, सत्संग और दृढ़ ध्यानाभ्यास और पाँच महापाप (झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार) का त्याग करने के लिए बताते हैं।

महर्षि में हीं परमहंस जी महाराज के परम शिष्य पूज्यपाद गुरु सेवी स्वामी भगीरथ जी महाराज भी हमें शान्ति प्राप्त करने का उपाय बताते हैं 'संतमत का उपदेश है, यदि कोई शान्ति पाना चाहता है, तो उसको अभ्यास करना होगा। किस चीज़ का अभ्यास? संतगय बतलाता है कि ऐसा अभ्यास करना चाहिए कि असत् मंडलों से सुरत का सिमटाव होकर इसकी उर्ध्वगति हो जाए और परम प्रभु परमात्मा को प्राप्त कर सारे दुःखों से छूट जाए। संतमत बतलाता है कि सुरत की संभाल का अभ्यास पहले मानस जप से, फिर मानस ध्यान से, फिर दृष्टियोग से, पुनः सुरत-शब्द-योग से होता है।' (गुरु सेवी भगीरथ बाबा, 2014: 6)

अतः शान्ति पाने के लिए और दुःखों से छुटकारा पाने के लिए सुरत के सिमटाव का अभ्यास बहुत ही जरूरी है। सुरत के सिमटाव का अभ्यास ध्यानाभ्यास से होगा। संतमत के उपदेश में ध्यान को बड़ी महिमा है। यदि हम इस संसार या कई लोक के मालिक भी हो जाए, तो भी ध्यान के बिना हमें शांति नहीं मिलेगी। महर्षि मेंहीं परमहंस जी महाराज की वाणी है-

मास फागुन मस्त होई के, कियो बहुत बनाव हो।
उँच महलन जटित मणिगण, सुख तबहूँ नहीं पाव हो।
कूल भल अरु रूप भल अरु , त्रिया भल पायो सही।
सुख तवहुँ नाहीं मिले बिन, ध्यान के स्वपनहुँ कहीं।
चैत सुख की चिन्त करहु तो, विविध कर्महिं त्यागहु ।
ध्यान में लवलीन रहिके, गुरु चरण अनुरागहू।
विविध नेम अचार जप तप, तिरथ व्रत मख दानहू।
कबहुं सरवर ना करै जो, ध्यान बन पलहु कहूँ।
वैशाख सकलो साख ग्रंथन, की रहे जानत कोउ।
ध्यान बिन मन अथिर जों तो, शांति नहिं पावे सोउ।
फिरे चहुँ दिशि जगत में, अरु वक्तृत्ता देता फिरे।
ध्यान बिनु नहिं शांति आवै, लोगहु कितनहु घिरें।
(महर्षि मेंहीं, 2008:90)

मन के चंचल रहने के कारण शांति की प्राप्ति नहीं हो सकती है। सच्चा सुख एवं पर शांति ध्यान में ही है, अन्यत्र नहीं। अब प्रश्न है कि हम ध्यान में कैसे सफल हों, जिससे कि हमें शान्ति प्राप्त हो। संतमत का ज्ञान हमें बताता है कि इसके लिए गुरु सेवा, दृढ़ ध्यानाभ्यास एवं कठोर संयम की आवश्यकता है। ध्यानाभ्यास में भी सफलता के लिए गुरु -भक्ति अर्थात् गुरु सेवा बहुत ही आवश्यक है। गुरु सेवा सबका आधार है। गुरु सेवा से गुरु कृपा मिलती है, जिससे जीव का शीघ्र ही परम कल्याण हो जाता है। गुरु की कृपा के बिना पंच विषयों (रूप, रस, गंध , स्पर्श और शब्द) का त्याग दुर्लभ है। वराहोपनिषद् में आया है:

"दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्त्वदर्शनम्. दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणाम विना"। (महर्षि मेंहीं, 2018:39)

महर्षि मेंहीं परमहंस जी महाराज की वाणी में है- "गुरु की भक्ति साधू की सेवा, बिनु नहीं कछूहु पाई हो"। (महर्षि मेंहीं, 2008:30)

अर्थात् सद्गुरु की भक्ति और साधु-संतों की वाणी का अनुसरण किये बिना कुछ भी आध्यात्मिक लाभ प्राप्त नहीं होता है। पुनः ये अपनी पुस्तक "सत्संग-योग", भाग - 4 के पारा 84 में लिखते हैं "सत्संग, सदाचार, गुरु की सेवा और ध्यानाभ्यास ; साधकों को इन चारो चीजों को अत्यन्त आवश्यकता है। गुरु की सेवा में उनकी आज्ञाओं का मानना मुख्य बात है। है। संतमत में उपर्युक्त चारों चीजों की ग्रहण करने का अत्यन्त आग्रह है। इन चारों में मुख्यतः गुरु -सेवा की है, जिसके सहारे उपर्युक्त बची हुई तीनों चीजें प्राप्त हो जाती हैं।" (महर्षि मेंहीं, 2018:326)

अतः गुरु सेवा को परमात्म-प्राप्ति का मुख्य आधार बताया गया है। इस तरह से विदित होता है कि संतमत में गुरु सेवा को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। गुरु के साथ-साथ साधना में सफलता प्राप्त करने के लिए सदाचार की भी महती आवश्यकता है। सदाचार क्या है? पंच पापों (झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार) से बचने को सदाचार कहते हैं। सदाचार का पालन किये बगैर साधना में प्रगति नहीं हो सकती। साधना और सदाचार के पालन में एक को दूसरे से बल मिलता है। सदाचारी विद्वान न हो तो कोई बात नहीं; लेकिन विद्वान यदि सदाचारी न हो तो वह

विशेष निंदा का पात्र बन जाता है। सदाचार का पालन करने से गुरु की दया प्राप्त होती है, जिससे साधना में सफलता प्राप्ति होती है। साधना में सफलता के लिए भोजन खान-पान का संयम बहुत जरूरी है।

महर्षि मेंहीं परमहंस जी महाराज की वाणी में है- खान पान को प्रथम सम्हारो। तब रस रस सय अवगुण मारो।। (महर्षि मेंहीं, 2008:45)

यदि हम अन्य दुर्गुणों पर विजय पाना चाहते हैं तो सबसे पहले हमें अपने खान-पान की सँभाल करनी होगी। साधना में सफलता की प्राप्ति के लिए वैराग्य की भी आवश्यकता है। वैराग्य अर्थात् अनासक्त भाव में रहना। संसार में अनासक्तभाव से रहना चाहिए। महर्षि मेंहीं परमहंस जी महाराज की वाणी में है- "अनासक्त जग में रहो भाई। दमन करो इन्द्रिन दुखदाई।। (महर्षि मेंहीं, 2008:45)

अनासक्त भाव में रहने से ध्यान भजन में मन लगता है और मन की चंचलता धीरे-धीरे समाप्त होती है। जो अपने को वैराग्य में रखते हैं, वे शीघ्र ही साधना में उन्नति करते हैं। साधना में सफलता अर्थात् ध्यानयोग में सफलता मिले, इसके लिए त्रयकाल संध्या एवं अन्य सभी कार्य मुस्तैदी के साथ नित्य - नियमित रूप से करना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में उपदेश दिया है:

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।। (श्रीमद्भगवद्गीता, अ0 6, श्लोक17)

समय एवं अध्यात्म-ज्ञान का महत्व साधना में प्रगति के लिए बहुत जरूरी है। समय व्यर्थ में नहीं नष्ट करना चाहिए। सत्संग एवं स्वाध्याय के द्वारा अध्यात्म-ज्ञान का आश्रय लेना चाहिए, जिसमें मन का साधन करने की प्रेरणा मिलती रहे। महर्षि मेंहीं परमहंस जी महाराज की वाणी में है-

समय गया फिरता नहीं, झटहिं करो निज काम।(महर्षि मेंहीं, 2008:83)

यह निज काम क्या है? निज काम है - ईश्वर भक्ति करके आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाना।

अतः समय के सदुपयोग के लिए ज्ञानोन्मुख विशेषकर अध्यात्म-ज्ञान भी होना चाहिए, जिससे लोक एवं परलोक - दोनों कल्याणमय हो। इस प्रकार स्पष्ट है कि संतमत के ज्ञान को हम अपने जीवन में धारण करते हैं, तो हमारा आत्म- कल्याण होगा और शान्ति स्वरूप सर्वेश्वर को पाकर परम शान्ति की प्राप्ति होगी। फिर इस संसार में लौटकर आना नहीं होता है। जबतक आवागमन होता रहेगा। तब तक जीव का कल्याण नहीं, शान्ति नहीं। इसके लिए प्रभु भक्ति ही उपाय है। महर्षि में हीं परमहंस जी महाराज की वाणी में है

आवागमन सम दुःख दूजा है है नहीं जग में कोई।

इसके निवारण के लिए, प्रभु भक्तिकरनी चाहिए।। (महर्षि मेंहीं, 2008:06)

संतमत का उपदेश बतलाता है कि ईश्वर-भक्ति से ही आत्म-कल्याण होगा, शांति की प्राप्ति होगी। इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।

सन्दर्भ :

1. महर्षि मेंहीं परमहंस, 2008, महर्षि मेंहीं पदावली , भागलपुरः अखिल भारतीय संतमत-सत्संग प्रकाशन
2. महर्षि मेंहीं परमहंस, 2009, महर्षि मेंहीं सत्संग सुधा- सागर, भागलपुरः अखिल भारतीय संतमत-सत्संग प्रकाशन
3. जयदयाल गोयन्दका, 2013, श्रीमदभगवदगीता, गोरखपुरः गीताप्रेस
4. गुरु सेवी स्वामी भगीरथ दस, 2014, परमात्म प्राप्ति के साधन, भागलपुरः अखिल भारतीय संतमत-सत्संग प्रकाशन
5. महर्षि मेंहीं परमहंस, 2018, सत्संग-योग, भागलपुरः अखिल भारतीय संतमत-सत्संग प्रकाशन

सहायक आचार्य

दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया

pranjan@cusb.ac.in

पुस्तक समीक्षा

नदी का नसीब

आनंदकुमार. आर.एल.

'नदी का नसीब' श्रीमती जोमोल के. जेकब के द्वारा रचित हिंदी कविताओं का संग्रह है। मलयालम भाषा-भाषी होने पर भी कवयित्री की हिंदी भाषा में दक्षता का साक्ष्य करती है संग्रह की हर एक कविता। इस संग्रह में भावनाओं का वैविध्य और आस-पास के जीवन यथार्थ की झलक मिलती है। यह प्रसन्नता की बात है कि कवयित्री जोमोल के.जेकब केरल हिंदी प्रचार सभा में स्थित स्नातकोत्तर केंद्र की पूर्व विद्यार्थिनी है। इसलिए समय-समय पर साहित्य रचना में स्नातकोत्तर केंद्र के अध्यापक गण सर्वश्री के.जी.बालकृष्ण पिल्लै, कुन्नुकुषी कृष्णनकुट्टी और प्रो.डी. तंकप्पन नायर जैसे अध्यापकों का प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन मिला है। जोमोल के द्वारा रचित 'लहरें' कविता 'कादंबिनी' पत्रिका में प्रकाशित हुई और उसकी काफी चर्चा भी हुई है। तब से हिंदी कविता रचने का कवयित्री का शौक बढ़ता गया और परिणामस्वरूप प्रस्तुत काव्य संग्रह पाठकों के सामने प्रस्तुत हुआ है।

'नदी का नसीब' में 59 कवितायें हैं जिनमें राष्ट्रप्रेम, पर्यावरण आदि विविध विषयों पर कवयित्री का रचना-कौशल प्रस्फुटित हुआ है। इसके साथ ही अपूर्व भावनाओं और जीवन के यथार्थ का हृदयस्पर्शी अंकन हुआ है। राष्ट्रप्रेम भरी कविताओं में 'भारतमाता,' 'चुनौती,' 'जन्मभूमि', 'भारत माँ की गोद में' जैसी कविताएँ विशेष उल्लेखनीय है। पर्यावरण से संबधित कविताओं में 'यह फूलों की हँसी', 'नदी का नसीब', 'लाल झंडा', 'किनारा' आदि कवितायें अत्यंत महत्व रखती है। 'कहानी सम्राट', 'वेतन', 'सृजन', 'ओणम', 'घर बने हीरे से', 'शराबी', 'तरुवर' सदृश्य कविताएँ विशेष व्यक्तित्व की कविताएँ हैं।

प्रस्तुत संकलन में संकलित 'चिराग', 'नारी', 'प्यार', 'पुतली पुतली ही', आदि कवितायें कवयित्री की काव्यप्रतिभा के उत्तम दृष्टांत है। प्रस्तुत संग्रह की संपूर्ण कविताएँ कवयित्री का सर्जन-कौशल, सुंदर भावना, अभिव्यक्ति की मधुरिमा और श्रेष्ठ काव्य गुणों से संपन्न है। इसका प्रकाशक जवाहर पुस्तकालय, मथुरा है। प्रकाशक ने पुस्तक की साज-सज्जा और आवरण पृष्ठ को बढ़िया बनाने में विशेष ध्यान दिया है। आलोच्य कृति की लेखिका और उसके प्रकाशक को शुभकामनाएँ।

कार्यकारिणी समिति का सदस्य
केरल हिंदी प्रचार सभा
तिरुवनंतपुरम - 14
मोबइल : 9447398951

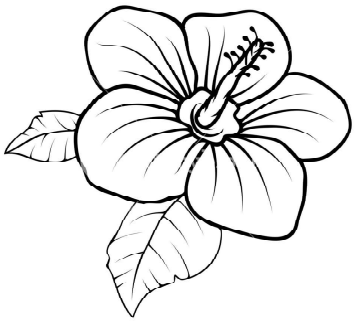

हिंदी सूफ़ी काव्य में समरसता

डॉ.सुजित.एन.तंपी

आलेख का सार

भारतीय समाज सदियों से बहुसांस्कृतिक, बहुभाषीय, बहुजातीय और बहुपंथीय राष्ट्र रहा है। विविधताओं को एकता में बंधनेवाला एक महान तत्व है जिसे चाहे हम भारतीयता कह सकते हैं। अलगाव के अंधकार एवं नशा की ओर जाने से रोक कर हमारी नई पीढि को परस्पर सौमनस्य के विशाल प्रेम के आलोक की ओर ले जाने की शक्तिहमारी संस्कृति में अंतर्निहित है। जनतंत्र को सार्थक बनाने के लिए इस ओर का ध्यान महत्वपूर्ण है। हिंदी सूफी काव्य में सामाजिक समरसता की चेतना जीवंत है। उसे फूँक-फूँक कर 'भा-रत' बनाने की कोशिश करनेवाले ही सच्चे देशभक्तबन सकते हैं। उदारपूर्ण अन्यों की स्वीकृति ही उस चेतना का मंत्र है ।

बीजशब्द : बहुसांस्कृतिकता,समरसता,मानवीय वातावरण,धार्मिक सौहार्द ,भारतीयता

विषय प्रवेश : हिंदी के मुसलमान सूफी कवियों ने भारतीय संस्कृति और हिंदू जीवन का जो चित्रण किया है, वह सामाजिक समरसता का ऐसा मूल्यवान दस्तावेज है, जिस पर भारतीय और राष्ट्रीय अस्मिता का सुदृढ किला बन सकता है। सभी सूफी कवि गावों और छोटे नगरों से संबंधित हैं जहाँ दोनों जातियाँ भाईचारे के साथ रहती रही है। हिंदू मुहर्रम और ईद में शरीक होते तथा मुसलमान होली खेलते और दीपावली पर दीपक जलाते आये हैं। इसी समरसता को ये साहित्य के माध्यम से निरूपित कर रहे थे। निश्चय ही आज हमारे देश, समाज और साहित्य की ऐसी ही कृतियों की आवश्यकता है जो समाज को एकता, समरसता और शांति का संदेश दे सकें।

हिंदी सूफी काव्य : तेरहवीं शताब्दी के मध्य से हिंदी में सूफी काव्य-परंपरा का प्रारम्भ होता है। इस काव्य की रचना वैसे मुसलमान कवियों ने की थी, जो सूफी मत के अनुयायी थे और धार्मिक सौहार्द को अपना लक्ष्य मानते थे।

ज्ञात तथ्यों के अनुसार मौलाना दाउद हिंदी के पहले सूफी कवि थे, जिनकी रचना चंदायन 1379 ई में लिखी गई थी। मौलाना दाउद से लेकर शेख नसीर(1917) के आसपास तक अर्थात् प्रायः साढे पाँच सौ वर्षों में लगभग दो दर्जन सूफी रचनाओं का पता चलता है, जिनमें कुतबन, जायसी, मंझन जैसे उच्च कोटि के कवि भी शामिल हैं ।

कहा जाता है कि सर्वप्रथम 'सूफी' शब्द का प्रयोग अबूहाशिम (सन् 777 ई के लगभग) ने किया था। सूफी साधकों के अनुसार परमात्मा ही गुणों के आधार पर महान हैं। 'अहम्' ही सब दुखों के मूल में है। अतः इस पर मनुष्य को विजय प्राप्त करनी चाहिए। यही 'सूफी' मत है। सूफी-साधक इस साधनामय जीवन को एक 'सफर' समझते हैं और साधना के पथ पर अगर होने को वे 'सूफी-मार्ग' कहते हैं। सूफियों ने प्रेम को ईश्वर माना है। परमात्मा ही उनका प्रियतम है, वही उनका प्रेम-भाव है। इस सूफी-साधना का चरम लक्ष्य ईश्वरीय प्रेम अर्थात् प्रिय से मिलन है। प्रेम ही उनका साधन है। प्रेम द्वारा ही वह अपने 'स्व' से मुक्तिपाने के लिए प्रयत्नशील होता है। जब सांसारिक भाव के परिष्कार के साथ लौकिक प्रेम (इश्क मजाजी) ईश्वरीय प्रेम (इश्क हकीकी) में परिणत हो जाता है, तब साधक को आत्मानंद की अनुभूति होती है, क्योंकि ईश्वरीय सौंदर्य ही उसके लिए वास्तविक सौंदर्य है। अंत में एक ऐसी स्थिति आती है, जब प्रेमी स्वयं प्रेम-रूप हो जाता है,

उसे 'अनलहक'(मैं ब्रह्म हूँ) कहते हैं। सूफी कवियों का मुख्य उद्देश्य जनजीवन में इस प्रेम-संदेश को फैलाना था। सूफी कवियों ने प्रेम की मूल धारा ईरान और भारत के सूफियों से ली, पर उनके काव्य - रचना के सभी उपादानों पर भारतीय प्रभाव है।

सामाजिक समरसता

हिंदी सूफी काव्य सामाजिक समरसता का अमूल्य स्रोत है। मुसलमान सूफी कवियों ने समग्र सामाजिक जीवन पर अपनी दृष्टी दौड़ाई है। उन्होंने हिंदु धर्म-दर्शन, कला-विज्ञान, समाज और राजनीति के विविध पक्षों को अपने काव्य में समाहित करके हिंदुओं को प्रभावित करने और उनके निकट पहुँचने का प्रयास किया, उसी प्रकार हिंदुओं की पूर्ववर्ती साहित्य-परंपरा से काव्यरूप, छंद-परंपरा और रस-परंपरा को भी उन्होंने ग्रहण किया ।

1. जनता के जीवन में

लोकजीवन में पर्वों का बडा महत्व है। सूफी प्रेमाख्यानों में उल्लास, बसंत पंचमी, होली, आसाढी और दिवाली आदि पर्वों का चित्रण हुआ है।

आषाढ मास के शुक्लपक्ष की द्वितीया को यह पर्व मनाया जाता है। इस दिन स्त्रियाँ देवपूजा के लिए सजधज के साथ जाती हैं और कुमारियाँ अपने लिए सुन्दर वर तथा विवाहिता स्त्रियाँ संतान की मनौती करती हैं। 'चंदायन' में इस पर्व का उल्लेख हुआ है- "आसाढ असाढी कई तिथि अही। दुज गिन देव जातरा कही।/ सोम बारू समहतु गुनि कहा। सो दिन आगे आवतु अहा।/होम जाप अगियार करावहिं। परसि देव कर जोरि मनावहिं।/जउ धरि माँथ देव पां लावइ। सो जसि चाँद सुरुज बरु पावई।"

2) कला में

हिंदी सूफी काव्य के आविर्भाव काल में भारत में संगीत का विशेष प्रचार था। कई मुसलमान संगीतज्ञों ने भारत की परंपरागत संगीतधारा को फारसी संगीत प्रवाह से मिलाकर नवीन 'राग- रागिनियों का निर्माण किया। अलाउद्दीन खिलजी के दरबार के कवि अमीर खुसरो का इस दृष्टि से विशेष महत्व है। उन्होंने इस प्रकार कई मिश्रित रागों और गीतों का आविष्कार किया। 'अनुराग बाँसुरी' में कवि कहते हैं "यह सनेह की बातैं नीको,है अनुराग बाँसुरी जी को।/है पुनि सरबमंगला सोई,सरब मंगला रागिनी होई।"

यही रागिनी ही साध्य है। इसी के हेतु सारी कथा गढी गई है। सर्वमंगला अपने रूप में अनंत सौंदर्य और रागिनी के अर्थ में अनंत संगीत का प्रतीक है। 'अनुराग-बाँसुरी' के कथानायक अंतःकरण के लिए वही साध्य है। सभी अंतः करणों के लिए वही अनंत रूप का प्रेम (इशक) और अनंत संगीत (समा) की तन्मयता अपेक्षित है ।

3) दर्शन में

सूफी कवियों ने ब्रह्म का जो निरूपण किया है, उसमें इस्लाम धर्म, सूफी दर्शन एवं उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म के रूपों की छाप दिखाई पडती है । सूफी कवियों का ब्रह्म मूलतः इस्लामी है जिसने इस्लाम की मान्यता के अनुसार सर्वप्रथम नूरे 'मुहम्मद' का निर्माण किया।मंझन ने स्पष्ट रूप से कहा है कि जो गुप्त ब्रह्म है, वही प्रकट रूप में मोहम्मद है-

"मूल मुहम्मद सभ जग साखा। विधि नौ लाख मटुक सिर राखा।/ ओही पटतर दोसर कोउ नाहीं।वह सरीर यह सब परछहीं।/करता गुपुत सभै पहचानाँ। प्रगट मुहम्मद काहू न जाना।/अलख लखिय जोहिं पार न कोई। रूप मुहम्मद काछें सोई।/रूपक नाउँ मुहम्मद धारा। अरथ न दोसर एकै करा।/उँचै कहौ पुकार कै जगत सुनै सभ कोइ।/परगट नाउँ मुहम्मद गुपुत सो जानिय सोइ।।"

यहाँ मोहम्मदीय नूर से संबधित प्रकरणों को इन काव्यों से हटा दिया जाय तो इनके ब्रह्म का निरूपण

उपनिषदों में निरूपित ब्रह्म के लक्षणों से तदाकार हो जाएगा।

4) आदर्श राज्य की कल्पना में : 'पद्मावत' में सिंहल द्वीप को अपने आदर्श राज्य के रूप में जायसी ने प्रस्तुत किया है। वहाँ आस्था है, साधना है, विभिन्न धर्मों के लोग एक स्थान पर संघर्षहीन मुद्रा में बैठे हैं।

"राउ रंक सब घर पर सुखी जो देखि सा हँसता मुखी।
रचि रचि राखे चंदन चेरा, पोते अगर मेद और केवरा।
सब गुनी पंडित और ग्याता, संस्कृत सबके मुख वाता।"

इसलिए वहाँ के सभी जन सूखी हैं, वे हँस रहे हैं वहाँ विषाद की छाया नहीं है। सभी गुणवान है, संस्कृत बोलते हैं, वे ज्ञानी भी है प्रजा शिक्षित भी है। मुसलिम कवि जायसी ने संस्कृत भाषा भाषियों को सम्मान की नज़र से देखा है यह सांस्कृतिक समन्वय का उदात्त दृष्टिकोण है। वहाँ धार्मिक समन्वय भी है। जायसी ने विभिन्न धर्मानुयायियों का संघर्ष देखा था इसलिए वे विविध संप्रदायों में सामंजस्य की कल्पना करते हैं ।

सिंहल द्वीप में जायसी का जीता-जागता आदर्श झलक जाता है-/"औरू कुंड बहु हँवहि ठाउँ सन तीरथ और तिन्ह के नांउ/मढ मंडप पहुँच पास सँवरे, जपा तपा सब आसन मारे।/कोई रिखेस्वर कोई सन्यासी, कोई रामजन कोई मसवासी।/ कोई ब्रह्मचर्य पंथ लगे, कोई दिगंबर आछहिं नागे।/कोई महेसुर जंगम जती, कोई एक परखै देवी सती।/ सबेरा खेवरा बानपरस्ती, सिंधसाधक अवधूत।/आसन मारि बैठ सब जारि आत्मा भूत।"

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन इस संदर्भ में स्मरणीय है -"ऐसे ही समय में कुछ भावुक मुसलमान प्रेम की पीर की कहानियाँ लेकर साहित्य के क्षेत्र में उतरे। ये कहानियाँ हिंदुओं के ही घर की थीं। इनकी मधुरता और कोमलता का अनुभव करके इन कवियों ने यह दिखला दिया कि एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है और जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूपरंग के भेदों की ओर से ध्यान हटा एकत्व का अनुभव करने लगता है। सच्ची सेक्युलर मानसिकता यही कार्य करने में चरितार्थ होती है, और यह कार्य अपने ढंग से इन सूफी साधकों ने अपने समय में किया।

निष्कर्ष

भारतीय समाज जाति और धर्म के नाम पर टूट रहा है और जनता के बीच भेदक रेखाएँ गहरी होती चली जाती है। इसलिए अशांति के कारण देश की प्रगति कुंठित हो जाती है। इस अवसर पर सामाजिक समरसता के महान स्तंभ के रूप में हमारे यहां मौजूद सूफी कवियों के साहित्य की चर्चा करना समयानुकूल प्रवृत्ति होगा। इन्होंने हिंदू जीवन के उदात्त और आधिकारिक सूत्रों के चित्रण द्वारा एक मार्ग प्रदर्शित किया है कि इस देश और संस्कृति को हिंदू, मुसलमान या अन्य सभी अपना मानकर इसकी संस्कृति में समरस हो कर एकताबद्ध हो सकते हैं और एक सुदृढ राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं ।

सहायक ग्रंथ सूचि

1. वेद प्रकाश गर्ग-हिंदी सूफी काव्य-कुसुम प्रकाशन, मुजफर नगर, प्र.सं.2004.
2. शिवकुमार मिश्र-भक्तिकाव्य और लोकजीवन- प्रतिध्वनि, अरुणोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.1991.
3. डॉ.कु.विद्योत्तमा मिश्र -पद्मावत की ज़मीन - संजय बुक सेंटर, वाराणसी, प्र.सं.2001.
4. भगवत शरण उपाध्याय-भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण-वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.2004.
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल-मलिक मुहम्मद जायसी-नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्र.सं.1999.

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
यूनिवर्सिटी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

'तीसरा आदमी' उपन्यास में स्त्री का मनोवैज्ञानिक पक्ष

गीतु दास

शोध सार - नई कहानी आंदोलन के प्रमुख लेखक कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में बदलते स्त्री-पुरुष या पति-पत्नी के संबंधों का वर्णन किया है। फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धांत के जरिए व्यक्तिमन के अचेतन की स्थिति, द्वन्द्व, शंका, अहं, हीन भावना एवं डर का सफल अंकन कमलेश्वर ने किया है। 'तीसरा आदमी' उपन्यास में लेखक ने सामाजिक मानवीय और व्यक्तिगत परिस्थितियों के बीच नरेश तथा चित्रा के संबंधों को टूटते व्यक्त किया है। परिस्थिति वश पति-पत्नी को अतृप्त इच्छाएँ दबाकर जीने के लिए विवश होना पडता है। यही अतृप्त इच्छाएँ अचेतन में दबकर कुण्ठा का रूप धारण करती है। पति का तिरस्कार भी तीसरे व्यक्ति के करीब आने की एक वजह बन जाता है। इस प्रकार इस लेख में इन समस्याओं के साथ स्त्री का मनोवैज्ञानिक पक्षपर भी प्रकाश डाला गया है।

बीज शब्द *- नारी मनोविज्ञान, अटूट संदेहवृत्ति, अकेलापन, संवादहीनता, शंका, पारिवारिक विघटन, आंतरिक द्वन्द्व, घृणा, अतृप्त इच्छाएँ ।*

कमलेश्वर का 'तीसरा आदमी' सहज शैली में लिखा गया उपन्यास है। इस उपन्यास में स्त्री-पुरुष संबंधों के बीच तीसरे आदमी की उपस्थित को विशिष्ट शैली माना जो गया था वह कथ्य का महत्वपूर्ण अंग है। 'तीसरा आदमी' उपन्यास निम्न मध्यवर्गीय परिवारों की कुंठाओं, हताशाओं, आर्थिक असमर्थताओं और अटूट संदेह वृत्ति से उत्पन्न विफल जीवन की कथा है। इसे आत्मकथा शैली और सांकेतिक भाषा में लिखा गया है। यह उपन्यास कसबाई और महानगरीय जिंदगी की एक जुडती हुई कड़ी के रूप में सामने आता है। तीसरा आदमी की उपस्थिति को लेखक ने सामाजिक आर्थिक जीवन से जोडकर विशिष्ट बना दिया है। यह उपन्यास मध्यवर्गीय परिवार के दांपत्य जीवन के उँच-नीच और असहज संबंधों का दस्तावेज माना जाता है ।

प्रस्तुत उपन्यास प्रथम पुरुष 'मैं' की शैली में लिखा हुआ है। प्रथम पुरुष 'मैं' अपनी पत्नी की ऐसी कहानी कहता है, जिसके बीच एक तीसरा आदमी है। उस तीसरे आदमी तथा पत्नी के अंतरंग प्रसंगों का खुला वर्णन 'मैं' अपने माध्यम से नहीं, बल्कि संकेतों और जो कुछ वह देखता है, उसके आधार पर करता है। इस विशेष स्थिति के कारण 'मैं' के मन का संदेह एवं आंतरिक द्वन्द्व, उसके भीतर के द्वेष तथा घृणा के भाव सामने आते हैं।

'तीसरा आदमी' उपन्यास में महानगरीय जीवन की यांत्रिकता, कोलाहल, भीड तथा व्यक्तिका आकेलापन एवं संवादहीनता की स्थिति का चित्रांकन हुआ है। इस उपन्यास की कथा पति-पत्नी के संबंध के बीच तीसरे आदमी की अनुभूति ही संपूर्ण उपन्यास में व्याप्त रहती है। शादी, नौकरी, ट्रान्सफर, पति-पत्नी और बच्चे, इन सब के बीच वही तीसरा आदमी सदैव छाया रहता है। आज के व्यस्त जीवन में यह असंभव ही है कि व्यक्तिरोज़ी-रोटी पाने की झंझट के अलावा अन्य सामाजिक स्थितियों के प्रति जागृत रहे। इस उपन्यास के पात्रों में अहम् की प्रबलता इतनी तीव्र है कि पात्र इसकी रक्षा के हेतु अपना पारिवारिक जीवन सन्देह में बिताते हैं।

कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में नारी की क्या सोच है और वह समाज में किस प्रकार से जीवन व्यतीत करती है, उसके हर पक्ष का वर्णन किया है। समाज में नारी को किस प्रकार की नज़रों से देखा जाता है। समाज में रहने हेतु नारी को किस प्रकार सब कुछ सहना पडता है, यह सब बातों का वर्णन कमलेश्वर के उपन्यासों में मिलता है। उनके उपन्यासों में नारी मनोविज्ञान को चार प्रकारों में बाँटा जा सकता है-

1. सामाजिक पक्ष
2. धार्मिक पक्ष
3. राजनीतिक पक्ष
4. आर्थिक पक्ष

'तीसरा आदमी' उपन्यास वर्तमान आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर मध्यवर्गीय परिवार का चित्रण है। इस उपन्यास में अपनी पहचान एवं व्यक्तित्त्व की सार्थकता की खोज करता नायक है तो दूसरी ओर परंपरागत रूढियों से मुक्तहोकर स्वतंत्र जीवन बिताना चाहती नायिका। महानगर पहुँचकर वहाँ के बदले हुए परिवेश में आर्थिक अभाव, बेगानेपन के घेरे में फँसे दम घुटते एवं जीने को विवश मध्य वर्गीय परिवार का चित्र अंकित किया गया है।

'तीसरा आदमी' उपन्यास का नायक है। नरेश और नायिका है। उनकी पत्नी चित्रा। तीसरा आदमी नरेश के रिश्ते का भाई 'सुमंत' है। नरेश इलाहाबाद में काम करता है लेकिन उसे इलाहाबाद छोटा शहर लगता है और वह दिल्ली जैसा महानगर में काम करना चाहता है। इसी कारण वह तबादला दिल्ली करवा लेता है। नरेश अपनी पत्नी चित्रा के साथ दिल्ली आ जाता है। दिल्ली जैसे महानगर की स्थिति इलाहाबाद से काफी भिन्न होती है। आर्थिक अभाव, आवास तथा अन्य सुविधाओं के अभाव में उन्हें नरेश के रिश्ते का भाई सुमंत के साथ रहना पडता है। सुमंत कुतुब रोड पर आराम नगर के एक कमरेवाले घर में रहता है। उन्हें भी सुमंत के साथ रहने के लिए विवश होना पडता है और इसी विवशता उनके जीवन का अभिशाप बन जाता है।

नरेश, चित्रा और सुमंत के एक ही कमरे में रहने के कारण चित्रा और नरेश के बीच अनेक प्रकार की दरार आ जाती है। दोनों खुलके बात न कर पाते हैं, शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ती भी वे नहीं कर पाते है। दोनों में एक तनाव सा आ जाता है। दोनों साथ रहते भी अपरिचित से लगने लगते हैं, वे विवाहित होकर भी अविवाहित सा जीवन गुजारते थे। नरेश इस स्थिति से मुक्तिपाना चाहता है लेकिन दिल्ली जैसे महानगर में आर्थिक अभाव के कारण अलग-सा घर लेकर रहना उनके लिए असंभव। दोनों में बढती दूरियों के कारण नरेश के शंकित मन में हमेशा चित्रा और सुगंत के बीच का शक रहता। पहले तो चित्रा समझ ही नहीं पाती कि नरेश किस बात का शक करता है। जब चित्रा को पता लगता है तो वह अपनी सफाई पेश करती है। नरेश का शक इतना बढ जाता है कि फिर चित्रा अपनी सफाई देना भी बंद करती है।

चित्रा एक उच्च शिक्षित युवती है इसलिए ऐसे खाली बैठना उसे घुटन जैसा महसूस होता है। सुमन उसे प्रेस में प्रूफ रीडिंग करने का काम दिलवाता है। यह बात नरेश को और भी बरदाश्त नहीं होती। अपनी ओर पति की उपेक्षा चित्रा में सुमंत के प्रति आकर्षण को बढावा देता है। नरेश को बार-बार ऐसा लगता है कि चित्रा किसी दूसरे पुरुष; सुमंत के साथ शारीरिक संबंध रखती है। इसी बीच नरेश को काम संबंधित प्रोग्राम के लिए दिल्ली से बाहर एक हफ्ते के लिए जाना पडता है। इसी कारण से चित्रा और सुमंत और भी करीब आ जाते हैं। नरेश को जब पता चल जाता है कि चित्रा अब गर्भवती है तब वह छुट्टी लेकर चित्रा को अकेली छोडकर अपने पिता के पास चला जाता है। चित्रा भी प्रसव के लिए अपना मायका चली जाती है। वह एक पुत्र को जन्म देती है। नरेश फिर सब बातें भूलकर चित्रा को वापस आने का अनुरोध करता है। चित्रा बच्चे के साथ आकर फिर नई जिंदगी की शुरुआत करती है।

पुत्र गुड्डु की आकस्मिक बीमारी में सुमंत पुनः घर में प्रवेश करता है। तीसरा आदमी की पुनः प्रवेश से नरेश फिर से परेशान हो जाता है। आर्थिक अभाव में पति से पूछे बगैर वह सुमंत की सहायता से एक हायर सेकेण्डरी स्कूल में नौकरी हॉसिल करती है। चित्रा दुबारा गर्भवती होती है लेकिन नरेश इस बच्चे को गिराना चाहता है। नरेश अपना विचार प्रकट करते हुए कहता है अगर मेरे साथ जीओगी तो ज़िन्दगी का दर्शन भी मेरे साथ करना पड़ेगा, पर चित्रा इसपर क्रोधित होकर कहती है कि मैं जानती हूँ कि मुझे पहली जैसी हालत में छोडकर फिर तुम भाग जाओंगे, तुम यही करोगे तुम्हारे पास और कोई रास्ता नहीं है..... हो या न हो, पर मैं इतनी बेचारी नहीं हूँ, जितना तुम समझते रहे हो"।[1]

नरेश तबदला लेकर पटना चला जाता है लेकिन चित्रा दिल्ली और अपनी नौकरी को छोडने के लिए तैयार

नही थी। नरेश की अनुपस्थिति में सुमंत और चित्रा नये पति-पत्नी की तरह साथ रहने लगते है। नरेश दिल्ली आकर सुमंत की अनुपस्थिति में चित्रा को अपना बनाकर बदला लेना चाहता है। वह कहता है कि - तब मेरे भीतर का हिंसक पशु जागा था। प्रतिशोध की भावना उफनाने लगी थी और मैंने चित्रा को पकड़ लिया था मन में मात्र इतना ही था कि अब सिर्फ एक बार उसे अपनी पत्नी बनाकर ठुकराउँ और फिर हमेशा के लिए चला जाउँ। शायद इससे मेरी आहत अहं तृप्त हो जाता।"[2]

लेकिन चित्रा की हटता के कारण वह असफल हो जाता है। बहुत बाद में उसे पता चलता है कि सुमंत ने आत्महत्या कर ली । जिसका कारण 'पति-पत्नी' के बीच तीसरे आदमी नरेश का आना होता है। नरेश को लगता है कि चित्रा अब वापस आयेगी लेकिन अपनी दृढनिश्चयता के कारण वह अकेली रहने का निर्णय लेती है। वह भी पहले के समान चित्रा के साथ न रह सकता था। तीसरे आदमी की छाया हमेशा नरेश को सताती थी। इससे छुटकारा पाना उसके लिए असंभव था। इस प्रकार हम पाते है कि अकेलेपन को बर्दाश करती चित्रा पति के शक के कारण सारे जीवन में घुटन महसूस करती थी।

निष्कर्ष - नई कहानी आंदोलन के प्रमुख प्रवर्तक कमलेश्वर का अत्यंत लोकप्रिय उपन्यास हैं 'तीसरा आदमी'। इसमें प्रेम और पारिवारिक संबंध के नाते स्त्री और पुरुष के बीच किसी तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति का चित्रण है। 'तीसरे' के आगमन से टूटते पति-पत्नी के संबंध को अत्यंत मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया हैं। फ्रायड के मनोविश्लेषण पद्धति से प्रेरणा लेकर व्यक्तिके अचेतन मन की स्थिति,द्वंद्व, शंका, डर, हीन भावना एवं अहं की सफल अभिव्यक्तिदी हैं। पढी-लिखी चित्रा पति के अभाव में भी दिल्ली जैसे महानगर में अपना अस्तित्व बनाए रखने की कोशिश करती। सुमंत की आत्महत्या की खबर सुनकर नरेश का अहं भी टूटकर बिखर जाता है। सदा उसे उस तीसरे की छाया सताती है। इस प्रकार लेखक ने जीवन की व्यस्तताओं के कारण तीसरे व्यक्ति की आगमन से पति-पत्नी के संबंध विच्छेद का वर्णन किया है। अहं और शक कारण टूटते पारिवारिक संबंधों का यथार्थपरक चित्रण किया गया है। उपन्यासकार ने महानगर में सीमित आय में जाने को विवश मध्य वर्गीय परिवार की आर्थिक मजबूरियों का चि़त्रण नरेश के माध्यम से किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण - डॉ. उषा स्पकाले, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2014
2. नारी विमर्श और मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य - डॉ. अनिला के पटेल, माया प्रकाशन, 2017
3. नारी सशक्तीकरण - डॉ. हरिदास रामजी शण्डे - सुदर्शन, ग्रन्थ प्रकाशन, जयपुर, 2005
4. तीसरा आदमी - कमलेश्वर, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 1976
5. कमलेश्वरः जीवन यथार्थ के शिल्पि - सुधाराणि सिन्हा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013
6. कमलेश्वर के उपन्यासों की वस्तु चेतना-मधुकर सिन्ह, सबुदागर प्रकाशन,
7. https://www.livehindustan.com/news/article1-story-161066.html
8. https://www.google.com/amp/s/wwbbyew.jansatta.com/sunday-magazine/jansatta-article-about-women-name-in-culture/244742/lite

डॉ.जी शांति - शोध निर्देशिका

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग

श्रीअबिरामी इल्लमय वनप्रस्था रोड

2/179ए2 , वडवल्लि कोयम्बत्तूर.41तमिलनाटु

नवजागरण के विशेष संदर्भ में चण्डाल भिक्षुकी और दुरवस्था - एक विश्लेषण

डॉ.बिंदु.एम.जी.

नवजागरण आधुनिक जनतांत्रिक चेतना का पर्यायवाची शब्द है। नवजागरण के तह में निहित भावबोध नवीनतम की खोज करने की प्रक्रिया में सक्रिय है। इसका मतलब कतई यह नहीं है कि पुरानेपन का पूर्ण तिरस्कार कर एकदम नयापन लाना। पुरानेपन में जो कमी निहित रहती है, जो गलत धारणा है, जो अज्ञानता है उसको दूर करने की प्रक्रिया नवजागरण की भावना के तह में निहित रहती है। भारतीय वाङ्मय में नवजागरण चेतना की लहरें इतनी शक्ति के साथ उठ गये कि पूरे सामाजिक सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक क्षेत्र को उसने बहुत अधिक हिला दिया। नवजागरण की भावना को फैलाने में साहित्य की भी अपनी विशेष भूमिका रही। साहित्य का क्षेत्र बहुत व्यापक है। हमारे महान वाङ्मियों ने साहित्य की परिभाषा देकर कहा है-साहित्य का समाज सापेक्ष्य होना परम आवश्यक है। साहित्य समाज तथा व्यक्ति के हित के लिए लिखा जाता है। वही साहित्य सत् साहित्य कहने को योग्य है। नवजागरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके तह में निहित भावना भी सत को लेकर चलती है। इसलिए नवजागरण को साकार करने की प्रक्रिया में साहित्य की भागीदारी बहुत बड़ी ही रही।

नवजागरण का साहित्य एक विशेष मकसद को लेकर चलनेवाला साहित्य रहा। इसका मूल लक्ष्य रहा पूरे भारत देश में जागरण लाना। तत्कालीन परिस्थिति भारत की जनता को प्रतिक्रियाविहीन बना दिया था। अधिकारियों एवं राजसत्ता द्वारा थोपी गई सारे के सारे अन्याय को जनता चुपचाप सहते रहे। पूरा भारतदेश यंत्रणाओं एवं कुप्रथाओं की रंगभूमि हो गयी थी। आम जनता अंग्रेज़ी शासन नीति के दमन चक्र में फंस गयी थी। पाश्चात्य संस्कृति का धक्का पडने से हमारी संस्कृति, भाषा साहित्य सब चकनाचूर हो रहे थे। धीरे धीरे चलती शोषण की इस प्रक्रिया से जनता अनभिज्ञ रही। किन्तु हमारे देश के कुछ महान वाङ्मीगण देश के उपर थोपे गए इस षड़यंत्र को पहचानते रहे। वे अपनी भाषाई स्वत्वबोध को खोकर बौद्धिक रूप से अपने को अस्वतंत्र महसूस करने लगे। अतः अठारहवीं शताब्दी में भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्र अधपतन के अगाध गर्त में गिरकर मरणासन्न होकर साँस ले रहे थे। हमारे सांस्कृतिक नेताओं ने महसूस किया कि देश भर के समग्र विकास के लिए जनता का, विशेष रूप से सर्वहारा वर्ग का जागरण परम आवश्यक है। नवजागरण के साहित्य का मूल उद्देश्य भी यही रहा। इसलिए नवजागरण के साहित्य में मुख्य रूप से नवीन भावबोध और नवीन सांस्कृतिक बोध को जगाने का कार्य चलता रहा। अठारहवीं शताब्दी का अन्तिम दशक केरल में नवजागरण के बीजवपन का काल रहा। सामाजिक-पुनरुद्धानवादी चेतना का विकास, शिक्षा के क्षेत्र में उत्पन्न क्रान्तिकारी परिवर्तन, छाप यंत्रों का आविष्कार, समाचार पत्रों का प्रचार प्रसार, भाषा और साहित्य का विकास ये सब पूरे भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र को नया रू प प्रदान कर रहे थे। केरल अपनी विशेष आकृति और प्रकृति के कारण अपना एक अलग दर्जा बनाकर रखा था। अठारहवीं शताब्दी के उस समय में केरल की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थिति बहुत शोचनीय थीं। सर्व अन्धविश्वासों और अनाचारों का बोलबाला था। सामान्य जनता दरिन्दों जैसी ज़िन्दगी बिता रही थी। पूरे राज्य की संपत्ति पर तथा ज़मीन पर ज़मीन्दारों का ही अधिकार था। अपने अधिकार के बल पर वे जनता को पैर तले दबाते रहे। पूरे राज्य में कई तरह के अन्धविश्वास फैलाकर वे अशिक्षित एवं अज्ञानी जनता का फायदा उठाते रहे। स्त्रियाँ चोली पहन न सकती थीं। पुरुष भी अच्छे कपडे पहन न सकते थे। बच्चों को शिक्षा पाने का अधिकार नहीं था। इस शोचनीय माहौल में भी सामान्य जनता चुप थी। प्रतिक्रिया विहीन होकर निर्जीव जडवत जिन्दगी जीने के लिए वे मज़बूर थे। भारत को अंग्रेज़ी गुलामीपन से मुक्तकरने हेतु उत्पन्न नवजागरण की लहरें

केरल को भी आलोडित किया था। यहाँ भी श्रीनारायण गुरु चट्टम्पिस्वामिकल, अय्यंकाली जैसे सामाजिक एवं धार्मिक नेतागण उदित हुए। जिन्होंने केरल को जागृत करने का कार्य शुरू किया। इनकी प्रेरणा से केरल की जनता पूरी ताकत के साथ प्रतिक्रियाशील हो उठे। अपने उपर थोपे गए अन्याय के विरुद्ध वे आवाज़ उठाने लगे। केरल में अंकुरित नवजागरण का मूलरूप ठीक इसी प्रकार का था।

सामान्य रूप से बीसवी शताब्दी के प्रारंभ केरल में नवजागरण कविता के बीजवपन का काल था। कविता के वास्तविक प्रयोजन को, उद्देश्य को पहचानकर कवि कविता लिखना शुरू करने लगे। मलयालम कविता में निहित नवचेतना के पीछे महाकवि कुमारनाशान का बहुत बड़ा हाथ है। वे बहुत काल तक बंगाल में रहते थे। नवजागरण का जन्म स्थान बंगाल ही है। बंगाल के वातावरण में कुमारनाशान को अंग्रेज़ी भाषा तथा साहित्य पढ़ने का अवसर मिला था। वे नवजागरण के देशव्यापी आन्दोलनों से परिचित हो गए। उन्होंने पहचान लिया कि कविता का लक्ष्य कृत्रिम सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है। कविता द्वारा अनेक जनहित कार्य कर सकते हैं। उस समय तक जो काव्य परंपरा चलती आ रही थी वह परंपरा सामान्य जन से बहुत दूर थी। कविता का क्षेत्र ब्राह्मणों तथा सामन्तों तक सीमित था।

अंग्रेज़ी तथा बंगला साहित्य पढ़ने से कुमारनाशान ने पहचान लिया कि कविता का क्षेत्र असीम है और कविता द्वारा समाज के लिए लायक बहुत अधिक कार्य कर सकते हैं। अंग्रेज़ी तथा बंगला कविता के साथ का संपर्क कुमारनाशान के कवि व्यक्तित्त्व को बहुत अधिक परिवर्तित कर लिया। उन्होंने कविता को समाज के साथ जोड़ने के उस महान कार्य की शुरुआत की। यही से होकर स्वच्छन्दतावादी काल्पनिकतावादी काव्य प्रवृत्तियों का बीजवपन केरल की कविताओं में दिखाई पडने लगा। स्वच्छन्दतावादी काल्पनिक भावधारा की अभिव्यक्ति ने मलयालम कविता को एक विशेष प्रकार की मौलिकता प्रदान की। नवजागरण में निहित आदर्शात्मकता, देश प्रेम, देश भक्ति हमारी संस्कृति और सभ्यता की महनीयता आदि महान भावना को सामान्य जनता तक पहुँचाने में यह नव स्वच्छन्दतावादी काल्पनिक काव्य प्रवृत्ति सफलता प्राप्त करती रही। स्वच्छन्दतावाद का दूसरा रूप था यथार्थवादी प्रवृत्ति। समाज वास्तविकता का पर्दाफाश इसी भावना के तह में निहित रहता है। केरल के संदर्भ में ऐसे अनेक यथार्थ थे जिसका प्रत्यक्षीकरण करना बहुत अनिवार्य था। बहुसंख्यक लोग इस यथार्थ से इसके अन्तर्निहित वास्तविकता से अनभिज्ञ थे। केरल ऐसे अनेक सामाजिक कुप्रथाओं की रंगस्थली थी जिसके विरुद्ध क्रान्ति मचाना बहुत अनिवार्य कार्य था। मलयालम कविता ने समाज के इन नग्न यथार्थ का चित्र जनसामान्य के सामने रखा और जनता को उद्‌बोधित किया। सामाजिकता, भाईचारे का भाव, देश तथा राज्य रक्षा का भाव आदि को सामान्य जनता के मन में जगाने का कार्य मलयालम कविता करती रही। यहाँ जाति स्पर्धा के पागलपन में एक दूसरे को शत्रु माननेवाले आपस में लडते रहते थे। मलयालम कविता मनुष्य मनुष्य के बीच की इस दूरी को दूर करने का प्रयत्न करती रही।

केरल असल में जातिगत भेदभाव का केदार था। उस समय पूरे भारत में ब्रह्म समाज, आर्यसमाज, श्रीरामकृष्ण मिशन जैसी धार्मिक संस्थाओं द्वारा क्रान्तिकारी परिवर्तन होता रहा था। श्रीनारायण गुरु, अय्यनकाली जैसे धार्मिक एवं सांस्कृतिक नेता अपनी ओर से सामाजिक परिष्करण का कार्य करते रहे। केरल के संदर्भ में इनका प्रयत्न आंशिक रूप से सफल निकले। क्योंकि केरल में सवर्ण मेधावित्व बहुत अधिक शक्तिशाली ही था । लेकिन कवि कुमारनाशान ने अपनी कविता के ज़रिए यह सिद्ध कर दिखाते हैं कि कविता असल में औजर ही है वे श्री नारायण गुरु के शिष्य होकर केरल के सामाजिक क्षेत्र में उतरे। पूरे केरल में व्याप्त अन्यायों और अत्याचारों का दमन उनका मूल लक्ष्य रहा। यहीं से होकर उनकी कविता समाजोद्धार का कार्य करने लगी। वे केरल को, यहाँ की वास्तविक स्थिति को कथात्मक शैली में कविता द्वारा व्यक्त करने लगे। इन कविताओं में निहित नवचेतना का भाव केरल के दलित,शोषित पीडित लोगों के मन में नया जोश उत्पन्न करने में सक्षम निकला। उन्होंने असल में श्रीनारायण गुरु के सिद्धान्तों का व्यावहारिक पक्ष सामान्य जनता के समक्ष रखा। जनता इन सिद्धान्तों के अनुरूप अपनी ज़िन्दगी में परिवर्तन लाने को उद्यत हो उठे। यही आकर महाकवी कुमारनाशान के कवि व्यक्तित्त्व आसमान के तारे के समान पूरे केरल राज्य में चमक उठने लगे।

इस प्रकार पूरे समाज के संस्कार और परिष्कार के लिए समस्त क्षेत्र में समन्वयन लाना ही कुमारनाशान की कविता की मूल चेतना रही। यह भावना पूरे केरल समाज के लिए अनिवार्य भी था। जाति धर्म वर्ग वर्ण भेद की मदान्धता में फँस कर अपने राज्य का सर्वनाश करनेवाले केरल जनता को देखकर कुमारनाशान जी ने यह निर्णय ले लिया था कि उनकी कविता का मूल लक्ष्य इन्हीं जनता का उद्धार ही है। समाज हितैषी कार्य करके ही वे आगे बढ़ेगें। इसके लिए कविता का सहारा लेकर वे आगे बढ़ते रहे। चण्डाल भिक्षुकी कुमारनाशान की एक लंबी कविता है। इस कविता में उन्होंने केरल में व्याप्त सवर्ण जाति व्यवस्था के खिलाफ खुले रूप में आवाज़ बुलन्द किया है। गर्मी के सूखेपन में भूखा प्यासा ब्राह्मण साधु एक चण्डाल कन्या से पानी के लिए प्रार्थना करता है। वह कन्या पानी देने को तैयार नहीं है। वह चकित होकर साधु से पूछ्ती है कि क्या आपने अपनी जाति भूल गये हो? मैं तो एक चण्डाल कन्या आपको कैसे पानी दे सकती हैं? इसके लिए साधु जो उत्तर देता है वह केरल के समस्त सवर्ण शक्तियों को हिलाने वाला ही था।

' हे बहिन मैं तुमसे जाति नहीं पूछ्ता/मैं तो इतना प्यासा हूँ/प्यास को मिटाने के लिए थोड़ा सा पानी/केवल इसके लिए ही मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ। चण्डाल कन्या का उस बौद्ध भिक्षु के प्रति आकर्षण उसे उस बौद्ध विहार तक पहुँचाती है। वहाँ आकर मातंगी नाम स्वीकार कर वह बुद्ध भिक्षुकी बन जाती है। एक चण्डाल कन्या का बुद्ध विहार केन्द्र में नाम और स्थान पाना यह सवर्णों के लिए असहनीय कार्य हो जाता है। चण्डाल भिक्षुकी की कथातन्तु मात्र इतना ही है। इसके द्वारा कवि समाज में दृढ़मलू हो गये जाति व्यवस्था को ललकारते है। भारत की जाति व्यवस्था में चण्डाल का दर्जा सबसे नीचे है। वे उच्चस्तरीय लोगों के बीच नहीं रह सकते। उनके प्रति अत्यन्त क्रूर दुर्व्यवहार किया जाता था। हिन्दू धर्म के सवर्ण वर्ग पाषाण को देवता मानते थे, पेड पौधों, पशु-पक्षियों को धार्मिक प्रतिष्ठा देते थे किन्तु अस्थि माँस से युक्त अपने सहजीवी को तुच्छ नीच और निकृष्ट मानते थे"

केरल के संदर्भ में नवजागरण के इस युग में महाकवि कुमारनाशान ने सशक्त रूप से इस जाति व्यवस्था की खिल्ली उठाई। उन्होंने शूद्रों की दुखद स्थिति पर दुख प्रकट करते हुए सवर्णों द्वारा किए जानेवाले अन्याय का खुला पर्दाफाश किया। अन्य सामाजिक दोषों की अपेक्षा अस्पृश्यता हिन्दु समाज के लिए एक अभिशाप है क्योंकि हमारे सार्वभौम धर्म व्यवस्था में सबको ईश्वर की संतान मानते हैं। सबका आपस में आदर और प्यार का होना ज़रूरी है। लेकिन मनुष्य की संकुचित वृत्ति ही हमारे धर्म को इतना विकराल बता दिया है। असल में कुमारनाशानजी ने धर्मान्धता के सामने अपना आक्रोश व्यक्त करते हैं। 'ये दलित,/धान के पौधे के नीचे/उगनेवाला जंगली घास नहीं है/कोई शंका नहीं इसमें कि/सब एक जुड़ होकर बढ़ेंगे तो /वह भी ज़रूर फलफूलों से चमक उढ़ेगी।"

धर्म के नाम पर अत्याचार और सर्वनाश के इतिहास से हम अपरिचित नहीं है। हिन्दू मुसलिम संघर्ष के ऐसे अनेक उदाहरण हमारे सामने है। केरल भी इससे अछूते नहीं है। सन 1922 में केरल में घटित एक इतिहास प्रसिद्ध क्रान्ति है-मलबार आन्दोलन या माप्पिला क्रान्ति। इसकी विध्वंसात्मकता का पूरे केरलवासी शिकार हो गये थे।

महाकवि कुमारनाशान की कविता 'दुरवस्था' एक सवर्ण हिन्दू घराने की लड़की की दुरवस्था की कहानी को लेकर चलती है। माप्पिला क्रान्ति की शिकार वह लडकी अनाथ होकर एक अछूत के घर में शरण पाने को मजबूर हो जाती है। कविता के ज़रिए कुमारनाशान सवर्ण मेधा शक्ति को असल में ललकारते हैं। उस समय हिन्दू मुसलमानों के बीच की वैर भावना का कोई ठिकाना नहीं था। दोनों आपस में एक दूसरों को मारते पीटते थे। एक दूसरों के घरों में घुसकर वहाँ के बच्चों एवं स्त्रियों की नृशांस हत्या करते थे। मलबार मुसलमानों का शक्ति केन्द्र था इसलिए वे बिना किसी कारण के सवर्ण हिन्दुओं के घरानों का सर्वनाश करते। हिन्दू जनता अपने घर गृहस्थी और समस्त संपत्ती को छोड़कर जान बचाकर कहीं दूर भागे थे। असंख्य हिन्दुओं की नृशंस हत्या होती रहती थी। इसी घटना को विषय बनाकर महाकवि कुमारनाशान ने 'दुरवस्था' नामक कविता लिखी। कविता बस इतना बताती है कि मुसलमानों के संहार ताण्डव के कारण नामावशेष हुए उस सवर्ण हिन्दू घराने की एक लड़की एक दलित के घर में प्राणरक्षार्थ पहुँचती है। यहाँ उसे शरण मिलती है। उस

लड़की के बारे में कवि की

पंक्ति है- 'पिता के सिवा कोई दूसरा पुरुष/उसके चेहरे को आभी तक देखा भी नहीं है'

ऐसे निरीह निष्कलंक, समाज के अन्य मनुष्यों से अपरिचित उस लडकी का एक दिन अचानक अनाथ हो जाना ' कवि इसी को उस लड़की की 'दुरवस्था ' कहते हैं। वही लड़की अब चात्तन पुलयन (दलित जाति) के उस घर में बिना किसी डर के जीती है। परिस्थिति वश वह दलितों के बीच आ फँसती है। इसमें उसका कोई दोष नहीं है। लेकिन आगे उसके जातिवाले लोग उसे स्वीकारने के लिए तैयार नहीं होंते। वह जान लेती है कि पूरी ज़िन्दगी इन दलित लोगों के साथ ही रहना होगा। दलितों का उसके साथ व्यवहार इतना ममतापूर्वक था उनके स्नेह में कोई कलंक नहीं था। इसलिए वह लडकी सहर्ष चात्तन पुलयन को पति स्वीकारती है। सवर्ण घराने के उस संपन्न लडकी का दलित युवक से शादी करने के पीछे की यह दुरवस्था-यह असल में सवर्णों की दुरवस्था है। इस दुरवस्था के ज़रिए कवि ने सवर्ण मेधा शक्ति की सींग को तोड़ने का कार्य किया है। कविता में ऐसी अनेक पंक्तियाँ हैं जिनमें सवर्णों के जातिगत भेदभाव को तोड़ने की क्षमता निहित रहता है। एक ओर वे कहते हैं- ब्राह्मण की सृष्टि जिसने की है/ उसीने दलित की भी सृष्टि की है'

समाज में व्याप्त जाति धर्म के वैमनस्य को मिटाना नवजागरण का कार्य रहा है। वही कार्य अपनी कविताओं के ज़रिए कुमारनाशानजी खूब करते रहे। वे हमेशा समाज हितैषी कवि होकर रहे। भोजन, वस्त्र और घर जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं से वंचित होकर रहनेवालों के वे पक्षधर रहे। शिक्षा, नौकरी जैसी सामान्य आवश्यकताओं को पाने के लिए संघर्ष करनेवालों का साथ वे देते रहे। केरल में सरकार हमेशा सवर्ण जातियों के हितैषी रही। इसलिए यहाँ जनता का सशक्त प्रतिरोध भी पूरी तरह कामयाब नहीं हुए। यहाँ की सामाजिक व्यवस्था की यह खासियत थी कि यहाँ अल्पसंख्यक सवर्ण बहुसंख्यक अवर्णों का शोषण करते थे। गुलाम बनाकर अपने पैर तले उन्हें दबाते रहे। ऐसे प्रतिकूल परिस्थिति में प्रतिरोध को अधिकाधिक शक्तिसे युक्तबनाना अनिवार्य कार्य था।

महाकवि कुमारनाशान केरल के अवर्णों को यह चेतावनी देते हैं कि जब तक यहाँ जाति, वर्ग और वर्ण व्यवस्था कायम रहेगी तब तक हम गुलाम ही रहेंगे। यहाँ हम दोनों प्रकार से गुलाम हैं। एक ओर विदेशी शासन के हम गुलाम है तो दूसरी ओर देशी सामन्त सवर्ण मेधावित्वों के हम गुलाम हैं। दोनों तरफ से हमें मुक्तिमिलनी है। कवि कह उठते हैं-

"जाग उठो/अपने आत्म शक्ति को जगाओ/जहाँ जहाँ जातीयता का दानवी रूप/ताण्डव कर रहा है/वहाँ वहाँ आकर उसका सामना करो/उसका ध्वंस करो' ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

हिन्दी

1. हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान-मैनेजर पाण्डेय
2. कविता का प्रति संसार-निर्मला जैन
3. आधुनिक हिन्दी कविता-डॉ.हरदयाल
4. आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना-डॉ सुधाकर शंकर कलवडे
5. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास-रामस्वरूप चतुर्वेदी
6. आधुनिक कविता यात्रा-रामस्वरूप चतुर्वेदी
7. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास-श्रीकृष्णलाल
8. अतीत के हंस-मैथिली शरण गुप्त-डॉ. प्रभाकर क्षोत्रिय

मलयालम

1. कवितयुम् सामूहिक परिवर्तनवुम्-डॉ.के के इन्दिरा
2. स्वातंत्र्य समरवुम् मलयालम साहित्यवुम्-प्रो एम अच्चुतन
3. श्रीनारायण गुरु देवन्डे स्वाधीनता-डॉ. के प्रशोभन मलयालम कवितयिल
4. आशान्टे पद्यकृतिकल् -डी सी बुक्स

असोसियट प्रोफसर, हिंदी विभाग
महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम

मोहन राकेश के नाटक में आधुनिकता बोध

डॉ.अदिति सैकिया

आधुनिकता बोध आगे आनेवाले साहित्य के विकास का पूर्वाभास है। इस नवीन राहों का अन्वेषणकारी हिन्दी साहित्यकारों में मोहन राकेश का स्थान महत्वपूर्ण है। मोहन राकेश एक युगान्तकारी नाटककार हैं। जिन्होंने आषाढ़ का एक दिन , 'लहरों के राजहंस',आधे-अधूरे आदि नाटकों की रचना की। यद्यपि जीवन मूल्य के रूप में 'आधुनिकता' की अवधारणा पश्चिमी समाज की देन है। लेकिन राकेश की आधुनिकता भारतीय आधुनिकता के समानान्तर है। स्वाधीनता के बाद हमारे समाज में चारों ओर कुंठा, निराशा, अकेलापन, भ्रष्टाचार, स्वार्थान्धता, अवसरवादिता, अर्थाभाव, अलगाव आदि बुरी तरह से फैले हुए हैं। जिसके फलस्वरूप आज का व्यक्ति दुहरी जिन्दगी जी रहा है। मोहन राकेश ने बदलते हुए जीवन-परिवेश के साथ अपनी संगति रखने का प्रयास किया है और शायद इसीलिए आधुनिकता बोध उनकी रचनाओं में सहज ही व्यक्त होता रहा है। उनकी नाट्यत्रयी में मानवीय सम्बन्धों का विशेष कर बदलते हुए एवं टूटते हुए सामाजिक मूल्यों के सन्दर्भ में व्यक्ति के निजी सम्बन्धों का, पति-पत्नी के रिश्तों की दरारों का स्पष्ट वर्णन है। उन्होंने आधुनिक भावबोध की अनेक समस्याओं जैसे अवसरवादिता, भ्रष्टाचार, सम्बन्धों का विघटन और जुड़े रहने की छटपटाहट, आर्थिक विवशता और जिन्दगी के दुहरेपन, अस्तित्व की चेतना और संघर्ष आदि को गहराई से उठाया है। उन्होंने अपने नाटकों के द्वारा परम्पराओं से अलग एक नया प्रतिमान स्थापित किया है। प्रख्यात नाट्य समीक्षक डॉ. सुरेश अवस्थी का कहना है -"उन्होंने अपने नाटकों से हिन्दी में एक नया दर्शक वर्ग तैयार किया और जयशंकर प्रसाद के बाद पहली बार हिन्दी रंगमंच की समर्थता का एहसास कराया।"[5] उनके नाटकों की आधुनिकता जीवन की यथार्थवादी चेतना से जुड़कर स्पष्ट होती है। उनकी विशेषता इसी में है कि उन्होंने नाटक के लिए तकनीक और नयी भाषा का आविष्कार किया। नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा के निर्देशक तथा प्रख्यात रंगकर्मी अल्काजी ने कहा है -"उनकी सारी चेतना व्यवस्था के प्रति उनकी विचारधारा 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' में प्रतिबिम्बित हैं। 'आधे अधूरे' के जरिये उन्होंने हिन्दी नाटक को एक नई भाषा और एक नया तेवर दिया। भारतीय रंगमंच के नये युग की शुरूआत उनके द्वारा ही होते हैं।"[6]

आधुनिकता के विविध आयाम मोहन राकेश के नाटकों के विविधि भंगिमाओं में परिलक्षित होते हैं। 'आषाढ़ का एक दिन','लहरों के राजहंस' और 'आधे अधूरे' तीनों नाटकों का कथानक आधुनिक संवेदना की उपज है। 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक की कथावस्तु कवि कालिदास और उनकी बाल संगिनी मल्लिका से सम्बन्धित है। नाटक या नायक कालिदास अति मानव नहीं साधारण मनुष्य है, जो अपने अन्तर्द्वन्द्व से टूटता है लेकिन उसका विरोध नहीं कर पाता। नाटक की नायिका कालिदास से प्यार करती है और प्रेमी को जिन्दगी में आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा भी देती रही। मल्लिका से प्रेरित होकर कालिदास उज्जैन चला गया। बिना किसी आकांक्षा से वह गुप्त सम्राट का राजकवि और फिर कश्मीर का शासक बन जाता है। उज्जैन जाने के बाद राजकवि, राज्याधिकारी और राजकुमारी प्रियंगु जैसी पत्नी को पाकर भी कालिदास को हमेशा मल्लिका का अभाव महसूस होता था। जिसका प्रतिबिम्ब उन्होंने अपनी हर रचना में किया है - "विरहविमर्दिता यक्षिणी तुम हो......। अभिज्ञान शकुन्तलम में शकुन्तला के रूप में तुम्हीं मेरे सामने थी।"[7] कालिदास आधुनिक साहित्यकार की नियति का प्रतीक है। कालिदास की तरह सरकारी सम्मान में बौद्धिक प्रतिभाओं में छटपटाते और टूटते कलाकार आज भी देखने को मिलते हैं। स्वयं राकेश ने लिखा है - "कालिदास मेरे लिए व्यक्ति नहीं, हमारी सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक है, नाटक में यह प्रतीक उस अन्तर्द्वन्द्व को संकेतित करने के लिए है जो किसी भी काल में सृजनशील

प्रतिभा को आन्दोलित करता है। व्यक्तिकालिदास को उस अन्तर्द्वन्द्व में से गुजरना पड़ा या नहीं, यह बात गौण है। मुख्य बात यह है कि हर काल में बहुतों को उसमें से गुजरना पड़ा है, हम भी आज उसमें से गुजर रहे हैं।"[8] राकेश जी की पौराणिक कथाओं में भी आधुनिक मर्म-कथा उभरती है। उनका ध्येय आधुनिकता के सन्दर्भ में इतिहास का प्रयोग केवल उपकरण के रूप में करना है। "कालिदास के अकेलेपन, विच्छिन्नता, अस्तित्व संकट, आत्म निर्वासन तथा भविष्य के प्रति अनिश्चितता में आधुनिक भावबोध के संकेत हैं।"[9]

मोहन राकेश ने आषाढ़ का एक दिन नाटक की तरह लहरों के राजहंस में भी ऐतिहासिक विषयवस्तु के परिप्रेक्ष्य में जो कुछ प्रस्तुत करना चाहा है वह आज के जीवन की ही अभिव्यक्तिहै। "वे ऐतिहासिक और पौराणिक कथानकों को दोहरी अर्थवत्ता से बाँधते हैं तथा समकालीन कथानकों को आज के जीवन की विसंगति और ज्वलन्त समस्याओं में ले जाकर खोलते हैं।"[10] लहरों के होने का स्पष्ट संकेत मिलते हैं। नाटक के नायक नन्द और नायिका सुन्दरी के माध्यम से आधुनिक स्त्री पुरुषों के अन्तर्विरोधों, द्वन्द्व और संघर्ष को चित्रित किया गया है। नन्द एक साधारण मनुष्य है जो द्वन्द्वयुक्तआधुनिक पुरुष का प्रतीक है। "नन्द प्रकारान्तर से उस आधुनिक व्यक्ति का प्रतीक है जो जीवन को किसी आवरण से नहीं स्वयं छूकर मौलिक रूप से देखना चाहता है। परिस्थितियों और पद्धतियों ने आज के मनुष्य को उस बिन्दु पर लाकर खड़ा कर दिया है जहाँ वह विभाजित होने के लिए मजबूर है। आज के व्यक्ति की यह सच्चाई है कि वह किसी एक पद्धति को स्वीकार नहीं कर सकता।"[11] इस नाटक की नायिका सुन्दरी आधुनिक विदुषी, स्वाभिमानी तथा गर्वमयी स्त्री का प्रतीक है। पति-पत्नी में एक-दूसरे के सम्बन्धों के प्रति शंका होने की स्थिति ही पारिवारिक टूटन का मुख्य कारण है। नन्द की पत्नी सुन्दरी अपने पति को दूसरों के सम्बन्ध में बर्दाश्त नहीं कर पाती। इसी वजह से दोनों के बीच तनाव पैदा होता है। नन्द अपने अन्तर्द्वन्द्व से इतना टूट चुका है कि पत्नी के पास रहकर भी होने के बोध से टकराता है। वह अपने आपको अधूरा अनुभव करते हुए कहता है - "…..सब जगह मैं अपने को एक-सा अधूरा अनुभव करता हूँ।"[12] सुन्दरी हारकर भी अपनी हार स्वीकार नहीं करती। वह अपने उद्वेग का वास्तविक कारण स्वयं को मानती है। स्वयं के बारे में किसी का हस्तक्षेप सहन नहीं करती। सुन्दरी से तंग आकर नन्द उसे छोड़कर गौतम बुद्ध के पास चला जाता है। लेकिन बुद्ध ने भी उसका मुण्डन कराकर उनकी चुनौती को इनकार करना चाहा है। नन्द सुन्दरी तथा बुद्ध के बीच स्वयं को असहाय महसूस करता है। बुद्ध के पास से नन्द घर वापस आता है। इस नाटक में आधुनिकता बोध नन्द के अनिर्णिय की स्थिति में परायेपन और परम्परा से कटकर जीने में मिलती है।

वर्तमान समय में परिवार में आर्थिक तनाव को दूर करने के लिए स्त्रियाँ भी नौकरी करने लगी हैं। जिन परिवारों में केवल पत्नी कमाती है, पति बेरोजगार है, तब प्रायः पति-पत्नी के सम्बन्धों में तनाव पैदा होता है। "आधे-अधूरे नाटक में शहर में रहने वाले उस मध्यवर्गीय परिवार की तस्वीर है, जहाँ पत्नी नौकरी करके घर चलाती है और नियोजित परिवार के चार प्राणी उसकी कमाई पर जीते हैं।"[13] इस नाटक में सावित्री को महत्वाकांक्षिणी आधुनिक नारी के रूप में प्रस्तुत किया है, जो पति की असमर्थता अथवा आर्थिक वैषम्य को उसका अधूरापन मानकर स्वयं अपने अधूरेपन को अन्य पुरूषों से सम्बन्ध कर पूर्ण होने का प्रयास करती है। नायक महेन्द्रनाथ अन्तर्द्वन्द्व को खुद झेलता है लेकिन इसका विरोध नहीं कर पाता। खुद उसने ही कहा - "…..मैं इस घर में एक रबड़-स्टैम्प भी नहीं सिर्फ एक रबड़ का टुकड़ा।"[14] पति-पत्नी दोनों के बीच तनाव बढ़ता गया। एक-दूसरे से अलग होना चाहकर भी सम्बन्धों को ढोने के लिए वे विवश हैं। अर्थाभाव के कारण उनका जीवन पेचीदा बनकर रह गया है। इस नाटक में आधुनिकता अर्थ के अभाव और बेकारी की हालत में स्पष्ट होती है जिससे अलगाव, अर्थाभाव और सम्बन्धों का परायापन उभारता है।

अतः मोहन राकेश ने अपने नाटकों में परिवार की सामाजिक, आर्थिक स्थितियों और मानसिक तनाव को

झेल रहे आधुनिक व्यक्ति को दिखाया है। इस तनाव में आधुनिकता का बोध स्पष्ट होता है। डॉ. सुरेश सिन्हा जी का कहना है -"मोहन राकेश आधुनिकता के प्रति अतिरिक्त रूप से मोहग्रस्त हैं। इसलिए वे परम्परागत आदर्शो को स्वीकारना पुरानापन समझते हैं - उनके लिए उनकी उपयोगिता-अनुपयोगिता का प्रश्न ही नहीं उठता। वे चूँकि मनुष्य को उसके यथार्थ परिवेश में चित्रित करने पर बल देते हैं, इसलिए वे मानते हैं कि जब तक यथार्थ परिवेश नहीं सुधरेगा, मानव-मूल्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता।"[15]

आधुनिकता नायक की वापसी और प्रेयसी के समक्ष परायापन और अजनबी होने के बोध से स्पष्ट होती है। इस दृष्टि से राकेश के तीनों नाटकों में आधुनिकता बोध स्पष्ट हुआ है। उनके नाटकों का नायक चाहे कालिदास हो, या नन्द हो या महेन्द्र नाथ, सभी अपना घर-परिवार छोड़कर चला जाता है फिर घर की तलाश में वापस आता है और स्वयं घर में आकर अपने आपको अजनबी, पराया, अकेला और निर्वासित अनुभव करता है। अतः आधुनिकता नाटक में पात्रों की बेचैनी, तनाव और छअपटाहट में जाकर उभरती है और 'मैं' के फालतू होने की गहराई में स्पष्ट होती है। राकेश के नाटकों के पात्र कालिदास, नन्द, महेन्द्र नाथ जैसा व्यक्ति हर युग में होता है और अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ता है। उनके नाटक में आधुनिकता कथानक के साथ कलापक्ष की दृष्टि से भी स्पष्ट होती है। रंगमंच की नवीनता, संवादों की नवीनता, नूतन प्रतीक योजना और भाषा के माध्यम से नाटक के कथावस्तु को घटनाओं से नहीं बल्कि आज के व्यक्ति की मनःस्थितियों की बनावट से निर्मित किया है। लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने लिखा है - "लहरों के राजहंस तथा आषाढ़ का एक दिन मोहन राकेश के नाटक हैं, जिनमें आधुनिक शिल्प, नये मूल्य और अभिनव परिवेश को महत्ता दी गई है। ये नाटक हिन्दी नाट्य-साहित्य की नवीनता प्रगति की ओर संकेत करते हैं।"[16] आषाढ़ का एक दिन, 'लहरों के राजहंस' और 'आधे-अधूरे' नाटक अपनी अर्थवत्ता और शिल्प के कारण आकर्षक हैं। व्यापार और अर्थ दोनों दृष्टियों से ये नाटक अत्याधुनिक हैं। अतः उनके नाटकों में आधुनिक मनुष्य की नियति की खोज में आधुनिक-भाव बोध का गहरा रूप मिलता है।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. डॉ. नगेन्द्र - नयी समीक्षाः नये सन्दर्भ, पृ. 63
2. मिश्र, डॉ. उर्मिला - आधुनिकता और मोहन राकेश, पृ. 4 विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
3. वर्मा, लक्ष्मीकान्त-नये प्रतिमान और पुराने निकष, पृ.17
4. अग्रवाल, डॉ. विपिन कुमार-आधुनिकता के पहलू, पृ.13
5. अवस्थी, डॉ. सुरेश - धर्मयुग, 17 दिसम्बर 1972, पृ. 23
6. रंगकर्मी अल्काजी - धर्मयुग, 17 दिसम्बर 1972, पृ. 23
7. मोहन राकेश - आषाढ़ का एक दिन, पृ. 109, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, संस्करण 1983
8. मोहन राकेश - लहरों के राजहंस, भूमिका, पृ. 8, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1970 तथा संस्करण 1978
9. गौतम, डॉ. रमेश - हिन्दी के प्रतीक नाटक, पृ. 176, प्रथम संस्करण 1979, नचिकेता प्रकाशन, नई दिल्ली
10. मिश्र, डॉ0 उर्मिला - आधुनिकता और मोहन राकेश, पृ. 110 विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
11. गौतम, डॉ. रमेश - हिन्दी के प्रतीक नाटक, पृ. 185, प्रथम संस्करण 1979, नचिकेता प्रकाशन, नई दिल्ली
12. मोहन राकेश - लहरों के राजहंस, भूमिका, पृ. 137, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1970 तथा संस्करण 1978
13. मोहन राकेश - आधे अधूरे, पृ. 47, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1974 तथा संस्करण 1977
14. मोहन राकेश - आधे अधूरे, पृ. 44, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1974 तथा संस्करण 1977
15. सिन्हा, डॉ0 सुरेश - हिन्दी उपन्यास, पृ. 350 - द्वितीय संस्करणः मई 172, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
16. वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर - 20 वीं शताब्दी हिन्दी साहित्यः नये सन्दर्भ, आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ. 224

एसोसिएट प्रोफेसर एवं
विभागाध्यक्षा (हिंदी विभाग)
मनोहारी देवी कनई महिला महाविद्यालय
डिब्रूगढ़ (असम) - 786001
मोबाइल नं. 09435160571

दलित विमर्श : 'घासवाली' नाट्यरूपांतर के विशेष संदर्भ में

वीणा.एस.कुमार

'दलित' शब्द की परिभाषा के अन्तर्गत केवल अछूत जाति ही नहीं बल्कि आदिवासी, भूमिहीन, श्रमिक, कष्टकारी जनता और यायावर जातियाँ भी आती हैं। दलित साहित्य जो है उसमें दलितों का दुख, परेशानी, गुलामी, उपहास एवं दरिद्रता का चित्रण होता है। हर एक मनुष्य को स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और भयमुक्त सुरक्षा मिलनी चाहिए। दलित साहित्य का यही उद्देश्य है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार "दलित साहित्यकारों का उद्देश्य मात्र दलितों पर हुए अत्याचारों, अन्याय, शोषण का विवरण प्रस्तुत करना ही नहीं है, बल्कि स्वर्ण हिंदुओं को आत्मशोधन के लिए मजबूर करना भी है। यही है दलित साहित्य की प्रतिबद्धता।"[1]

शोध सार : दलित जीवन के शिकार के रूप में ही 'घासवाली' नाटक के पात्र भुलिया हमारे सामने खडी है। दलितों को अपने जीवन में बडी-बडी विषमतापूर्ण समस्याओं का सामना करना पडता है। उन समस्याओं का सही चित्रण 'घासवाली' में निहित है।

बीज शब्द : दलित, समस्यायें, स्वाभिमान, शोषण।

मूल आलेख : 'घासवाली' नाट्य रूपांतर में ठाकुर चैनसिंह निम्न वर्गीय दलित नारी भुलिया से दुर्व्यवहार करते हैं तब भुलिया आक्रोश करती है। वह स्वाभिमान से युक्त नारी दिखती है। वह चैनसिंह के व्यवहार का विरोध करती है और हाथ छोडने को कह उठती है। तब चैनसिंह यह कहते हैं "इतना अभिमान! तेरे पति महावीर में ऐसे क्या सुर्खाब के पर लगे हैं? ऐसा गबरू जवान भी तो नहीं, जाने तू कैसे रहती है उसके साथ!"[2] ठाकुर चैनसिंह के इस सवाल से यह प्रतिफलित होता है कि निम्नवर्गीय जनता को स्वाभिमानी होने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन स्वाभिमान तो हरेक व्यक्ति में निहित है, वह केवल उच्चवर्ग का अधिकार मात्र नहीं। चैनसिंह के वचनों से यह भी स्पष्ट है कि पतितों को उन लोगों की आज्ञा का अनुसरण करके जीना चाहिए और उन्हें अपने अभिमान एवं जीवन पर कोई स्वतंत्रता नहीं है। इस तरह दलितों या निम्नवर्गीय जनता का बहिष्कार करने की प्रवृत्ति सारे क्षेत्र में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में आज भी है। आज दलित लोग शिक्षित होने पर भी उन्हें कई समस्याओं को अपने कर्म मण्डल में झेलना पडता है। घास छीलने गई भुलिया को कई अवसर पर अपने जाल में फँसाने के लिए चैनसिंह प्रेम का अभिनय करते हैं । चैनसिंह के उन उपायों को तोडकर भुलिया आगे यह कह उठती है "यही बात है । गरीब की औरत ज़रा-सी घुडकी-धमकी या ज़रा-सी लालच में फँसकर तुम्हारी मुट्ठी में आ जाएगी।"[3] दलित लोग हमेशा गरीब ही रहते हैं। धन न होने से उन लोगों को ठाकुर के पास गुलाम बनकर ही जीना पडता है। इसलिए ही गरीब लोग अपने जीवन में स्वयं निर्णय लेने लायक नहीं होते । ठाकुर लोग उन्हें धमकाकर और डराकर अपने को लाभान्वित करने को समर्थ रहे हैं। यहाँ भुलिया भी इसी निस्सहायता की शिकार है।

फिर भी वह उस धमकियों में न फँसकर चैनसिंह पर अपने विरोध एवं आक्रोश प्रकट करती है। आज भी काम करनेवाली कई विधाओं में निम्नवर्गीय नारियों पर इस तरह का मानसिक एवं शारीरिक पीडाएँ खूब चल रही हैं। एक वर्ष पहले एक दफ्तर में घटित घटना दलितों के साथ होनेवाले बुरे व्यवहारों का एक सबूत है। उस दफ्तर के अधिकारी एक निम्नवर्गीय प्रतिनिधि थे। जब उसका अन्य आफीस में 'ड्रानस्वर' हो गया तब उसी कुरसी में आये हुए एक उच्च वर्गीय प्रतिनिधि ने उस कुरसी में बैठने के पहले तीर्थ जल छिडक कर उसे शुद्ध किया था। दुर्भाग्यवश यह नीच प्रवृत्ति केरल में ही हुई थी।

महावीर और एक पात्र है जिसकी आर्थिक स्थिति को समझकर चैनसिंह उसे एक काम सौंपते हैं। हर एक दिन इक्का लाकर उन्हें ले जाना। इसके लिए हर रोज़ रुपये भी देते हैं। तब महावीर कहता है "मालिक, आपकी परजा हूँ, जब मरज़ी हो बुलवा लीजिए। आपसे पैसा क्या लेना...।"[4] यहाँ महावीर के ज़रिए सारे निम्नवर्ग की जनता का मनोव्यापार स्पष्ट होता है। वे लोग मानसिक रूप से ही गुलाम रहे हैं। इसी मानसिकता होने से ही महावीर पैसे का निराकार करके एक गुलाम जैसे अनुसरण करने को उत्सुक है। कुछ माह पहले आ गये समाचार पत्र में भी मानव को गुलाम बनाकर भेजने का समाचार छपा था। वे लोग भी इस तरह गरीबी एवं निम्नवर्गीय जनता ही है।

निष्कर्ष

हर साल समाचार पत्रों में दलितों के प्रति होनेवाले अन्यायों को देखा जा सकता है । दक्षिण भारत में एक उच्चवर्ग की युवती एक निम्नजातीय युवा से प्रेम करें तो वहाँ के उच्चवर्ग की लडकी को परिवार समेत हत्या कर देते हैं । यह इस समाज में निहित प्रत्यक्ष सत्य है । मानवाधिकार सिर्फ कानून पर ही बाँधा है । लेकिन इसका उल्लंघन सब कहीं दिखता है । आगे भी इस तरह का उल्लंघन न होकर मानवाधिकार का अच्छी तरह सदुपयोग होगा।

संदर्भ- संकेत

1. समकालीन साहित्य और दलित विमर्श, संजय एल.मादार, पृ.सं:55
2. पंच परमेश्वर तथा अन्य नाटक (घासवाली), चित्रा मुद्गल, पृ.सं:10
3. वही, पृ.सं:14
4. वही, पृ.सं:22

शोध निदेशक - डॉ.सी.एस.सुचित
सह आचार्य, हिंदी विभाग
केरल विश्वविद्यालय, कार्यवट्टम कैंपस
शोध छात्रा, हिंदी विभाग, केरल विश्वविद्यालय
कार्यवट्टम कैंपस

कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यासों में नारी संकल्पना

डॉ.श्रीकला.एस.आर

हिन्दी साहित्य की महिला लेखिकाओं में श्रीमती कृष्णा अग्निहोत्री का विशेष स्थान है। उन्होंने अपने जीवन में जो कुछ देखा, भोगा और अनुभव किया उसको ईमानदारी तथा प्रामाणिकता के साथ अपनी औपन्यासिक रचनाओं में विविध पात्रों के माध्यम से व्यक्तकिया है।

कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यासों में नारी के विविध रूप चित्रित किये गये हैं। उनमें कहीं माँ की वेदना है, कहीं, पत्नी की, कहीं बहु की, कहीं भाभी की तो कहीं विधवा नारी की। जहाँ भी हो वहाँ नारी किसी न किसी वेदना से पीडित दिखाई देती है। लगता है आज भी इस पुरुष प्रधान समाज में नारी का चीर हरण करनेवाले दु:शासन तो बहुत हैं, पर बचाने वाला कोई कृष्ण पैदा नहीं हुआ है। कृष्णाजी ने यहाँ अपने हर पात्र में कल्पना के बजाए यथार्थ की भूमि प्रदान कर उसे जीवन्त बनाने की कोशिश की है। उन्होंने अपने उपन्यासों में स्त्री - पुरुषों के अवैध संबंधों की, तलाक से नारी की बिगडती स्थिति की, बच्चों में बढती अनैतिकता की, अनमेल विवाह से पीडित नारी की पारिवारिक सडांध की जैसी कई समस्याओं का चित्रण करती है। कृष्णाजी के उपन्यासों में हमें नारी के विविध रूप मिलते हैं जैसे माँ, सौतेली माँ, पत्नी, बहु, बेटी, सांस आदि।

कृष्णाजी के 'बात एक औरत की' नामक उपन्यास में मनका जो कनु की माँ है उसे हम ममतामयी माँ का प्रतिरूप नहीं कह सकता। वह हठी और क्रोधी थी। ज़रा से काम में त्रुटि होते ही वह कनु पर हाथ चला देती थी। पति की प्रेमिका सीमा के कारण मनका परेशान थी। परन्तु उसने खुलकर कभी लडाई नहीं की। वह प्रक्टिकल और दूरदर्शी थी। उसे पति के बडे घर में शांतिपूर्वक वृद्धावस्था काटनी थी, बेटे को दु:खी करके बेटी के लिए न्याय मांगनेवाली माँ नहीं थी।

प्रस्तुत उपन्यास में कृष्णाजी ने अपने जीवन के अनुभवों को कनु में समाया है। कृष्णाजी के शब्दों में, "वे मुझसे इतने बडे घर की झाडू और पोंछा करवाती, दिन भर भाग दौड ..... काम ..... पढाई ..... ऐसा लगता जैसे चाबुक लिए किसी शासक के पास मैं गुलाम बनकर जी रही थी।"

प्रस्तुत उपन्यास में सीमा नामक पात्र जो है कनु की सौतेली माँ जैसी है वह कनु के पिताजी पर डोरे डालता है। कनु के मन में यह सवाल उठता है, न यह स्त्री सुन्दर है, न योग्य, न विदुषी, न यह उनकी रिश्तेदार है, न ही पिताजी की पत्नी तब उसे क्यों देखे बिना पिताजी का मन ही नहीं मानता ऐसे ही बिना देखे पिताजी माँ के बिना क्यों रह पाते? क्या होता है किसी औरत विशेष में जो पुरुष को इस तरह बांध लेती है?"

प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा कृष्णाजी यह स्पष्ट करती है कि यदि स्त्री में ममता या वात्सल्य के ऊपर स्वार्थ भावना शासक करे तो वह माँ कहने के लिए योग्य नहीं बनेगी। उसकी स्वार्थ भावना से पूरा परिवार टूट जाएगा।

कृष्णाजी के 'निष्कृति' उपन्यास की नायिका है जोधाबाई। राजस्थान की पावन धरती में जहाँ शौर्य, स्वाभिमान एवं निडरता रही, वहाँ नारी को सदा भोग्या ही माना गया। उसे न प्रेम करने का अधिकार है न धर्म अपनाने का। ऐसी स्थितियों में भी कुछ नारियों ने अपनी छाप इतिहास के पन्नों पर बिखेरी है।

जोधाबाई के सामने जब अकबर के साथ व्याह करने का प्रस्ताव रखा गया तब वह समझ गयी कि "आपसी राजघरानों में पारस्परिक मैत्री और संबंध स्थापित करने के लिए नारी देह ही तो उपयोग का रास्ता, सुलभ माध्यम" है। वह अपने राज्य को तबाह नहीं करना चाहती है। विवाह के बाद अकबर के पास इतनी फुरसत नहीं थी कि वह जोधा की खबर लेते रहे। अपनी इस स्थिति पर टिप्पणी करते हुए जोधा ने कदली से कहा था, "सजा पाए कैदी को यह पता हो कि उसे रहना ..... कैसे जीना ..... और कहाँ जीता है! यह क्या कि ब्याहकर यहाँ किसी उपेक्षित सामग्री की तरह एक छत के नीचे पटक वे निश्चिन्त हो गए।" जोधा नारी जाति की स्थिति जानती थी। इसलिए वह अकबर से लडने के बजाए, उनका प्रेम पाने का इन्तज़ार करती रही। नारी की स्थिति पर अकबर का विचार जानने के लिए जब जोधा ने सवाल - जवाब किए तब अकबर ने जो कहा, वह महत्वपूर्ण है, "राजपूतों में ब्याह करना राजनीति है - परन्तु तुमसे जुडे रहने का अहसास केवल प्रेम नीति ही है। यदि तुम अतिसाधारण स्त्री होती तो मैं तुम्हें राजनीति के मंच की

सौगात मान भूल भी जाता, परन्तु एक अच्छी पत्नी में जिन गुणों की आवश्यकता है उससे मैं बेखबर नहीं रह सकता।" लेकिन जब अकबर जोधा के सामने कदली दासी का हाथ पकडा तो उसने तलवार खींच ली। उसका मत था कि पत्नी केवल वासना तृप्ति का साधन नही है। इससे पता चलता है कि जोधा का चरित्र कितना महान है।

कृष्णाजी के उपन्यास "मैं अपराधी हूँ" का एक विशिष्ट पात्र है रीमा जो नायिका सीमा की सगी छोटी बहन है। सीमा से वह नौ वर्ष छोटी थी। इसलिए माँ सीमा से उसका हरेक काम ले ली थी। रीमा सांवली थी लेकिन सीमा खूबसूरत थी। फिर भी रीमा में अहं की भावना इतनी थी कि कहने लगती, "बडी बडी आंखें हैं, मेरी नाक भी तो जीजी तुम से लंबी है, देखो तो तुम कितनी भारी भरकम हो, मेरा बदन तो एकदम छरछरा ही है।"

सीमा की शादी छोटी उम्र में हो जाती है। लेकिन उसके दांपत्य जीवन में दरार आ जाती है। इसी हालत में भी अपनी बहन पर खिल्ली उडाने का अवसर रीमा अच्छी तरह इस्तेमाल करती है वह सीमा से कहती है, "पति को बांधने के तरीके होते हैं, बडी अपने को रूपवान समझती है। अरे, स्मार्ट रहना चाहिए, यहाँ पडे रहकर तो समस्या हल नहीं होगी।"

प्रस्तुत उपन्यास के अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कभी कभी स्त्री ही स्त्री का दुश्मन बन जाती है।

कृष्णाजी का उपन्यास कुमारिकाएँ की मुख्य स्त्री पात्र गुड्डी विक्रांत की बेटी है। पत्नी के अभाव में विक्रांत ने जब शुचिता से शादी की तो गुड्डी ने अपनी नई माँ को स्वीकारा नहीं। विक्रांत अपनी बेटी को इतने प्यार से पाले थे कि घर के खर्च के पैसे गुड्डी के पास देने शुरू कर दिये जिससे शुचिता और उसकी बेटी पूजा के मन में अलगाव आया। शुचिता ने गुड्डी की चिन्ता करना छोड दिया। इसलिए वह कहाँ जाती है, किसके साथ घूमती है, इसकी कोई खबर उसको नहीं होती थी। उसको पता था, यदि वह कुछ सही भी कह देगी तो उसे ही गलत समझा जाएगा। गुड्डी अपने मन और तन से विद्रोह करती है। लेकिन अन्त में गुड्डी को अपने किए हुए कुकृत्यों पर पश्चाताप होता है और अपने को ठीक करने का निर्णय स्वयं लेता है। एक चरित्र क्या से क्या बन जाता है, इसका उल्लेख हमें गुड्डी के चरित्र में मिलता है।

कृष्णा अग्निहोत्री ने अपनी हर कृति में नारी को मुख्य पात्र बनाया है। उनकी औरत समय के साथ लडाई लडना चाहती है। हर पुरुष चाहे नारी कितनी भी उम्र की क्यों न हो, किसी भी पद पर क्यों न हो उसमें सिर्फ जिस्म ढूँढता है। उसे अपनी पत्नी की सुन्दरता दिखती नहीं, दूसरों की पत्नियों की दिखती हैं।

शोषण होने से आज नारी को ऐतराज है। उसे स्वयं को बेचने की इच्छा नहीं है। संघर्ष करते करते वह कहीं न कहीं हार जाती है। यह हार किसी एक नारी की नहीं, सदियों से चली आ रही भावनाओं में डूबी नारी की हार है। परन्तु लेखिका उसकी हार को मानने के लिए तैयार नहीं है। जब नारी पुरुष के पशुत्व से सुलह नहीं करती तो उसे पुरुष प्रधान समाज बदनामी में झुलस देता है। नारी की जागरूक चेतना को झकझोर कर उसके उपर अपनी मर्दानगी का लेबल लगाता पुरुषों का आदिम शौक है। नारी को सास द्वारा, पति द्वारा, बेटा - बेटी द्वारा, पर पुरुषों द्वारा, राजनेताओं द्वारा, यहाँ तक कि आज कामकाजी नारी को अपने कार्यालयीन अधिकारियों द्वारा अपमानित तथा कभी उनकी वासनाओं का शिकार होना पडता है।

कृष्णाजी ने नारी मन की अनेक गुत्थियों को विविध परिवेश और आयामों में रखकर परखा है। उन्होंने अपने साहित्य सृजन को किसी गुटबंदी में बांधा नहीं। उसने जो देखा, परखा, समझा उसे ही सच्चा ढांचा देकर उसमें अपनी आत्मा भरकर प्रस्तुत किया है। कोई भी तीखी अनुभूति उनकी कहानी का रूप लेती है। नारी के पक्षधर चाहे कितने ही कानून बनाए उसे पुरुष समाज में न्याय मिलता नहीं। नारी के हितैषी बनने का ढेंगा करनेवाले लोग मंच से नारी के अन्याय - अत्याचार का विरोध करेंगे, नारी को पुरुषों की बराबरी का भी मानेंगे लेकिन अपने ही घर जाकर नारी पर अपना पुरुषी अधिकार जताएंगे। कृष्णाजी ने अपनी नायिकाओं को विभिन्न मनः स्थितियों, परिस्थितियों, बाध्यताओं में डालकर उन्हें इससे मुक्तिदिलाने का प्रस्ताव पाठकों के आगे रखा है। यहाँ हर पात्र को कल्पना के बजाए यथार्थ की भूमि प्रदान कर उसे जीवन्त बनाने की कोशिश की गयी है। कृष्णाजी ने अपने कथा साहित्य में आज के समय की शोषित, व्यथित मनुष्यता की आवाज़ को अभिव्यक्ति देने का प्रयास अपने पात्रों के माध्यम से किया है।

असोसिएट प्रोफसर ऑफ हिन्दी
यूनिर्वेसिटी कालेज, तिरुवनन्तपुरम

आत्मकथा

देवयानम्

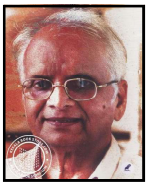

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

छठवाँ देवपद

उत्तरसन्धि

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

मेरे दूसरे मामा वट्टप्पिल्ली स्थानीकर डॉ. पी.एन.शर्मा (पी.नीलकंठ शर्मा) बडे नामी चिकित्सक थे (6.9.1908 - 20.12.1998)। अपने ही घर में उन्होंने "आयुर्वेद आश्रम" नामक अस्पताल की स्थापना की थी। आयुर्वेद की औषधियाँ बनाकर वे देश-विदेश के अनेक लोगों की चिकित्सा करते थे; साथ ही "न्यू हेल्थ" नामक अपनी पत्रिका में आयुर्वेद-शास्त्र की चिकित्सा-पद्धति के बारे में लेख लिख कर लोगों को अवगत कराते थे। शुचींद्र के स्थाणुमालय मंदिर के गौरवपूर्ण एवं निष्ठापूर्ण कर्तव्यों को निभाने के साथ ऐराणीपुरं गाँव के दो हाई स्कूलों के प्रशासन का भार भी समुचित ढंग से वे संभालते थे। प्रसिद्ध पण्डित श्री अय्या शास्त्री के शिष्य थे वे। इसलिए संस्कृत एवं अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं पर उनका समान अधिकार था। दोनों भाषाओं में वे रचनाएँ करते थे।

मामा की पत्नी यानी हमारी मामी का पैदाइशी घर तृश्शूर जिले के करवल्लूर नामक गाँव में है। इनका पुत्र डॉ.एन.पी. शर्मा तथा पोता डॉ.शिवप्रसाद दोनों ही घर के आयुर्वेद चिकित्सालय में काम करते हैं। मेरे पिता जी का भानजा श्री के.एन.सुब्रह्मण्य शर्मा मामा के चिकित्सालय में उनके शिष्य के रूप में काम करता था। बाद में वे तिरुवनंतपुरम के आयुर्वेद कॉलेज में भर्ती हो गए और उन्हें डॉक्टरी मिली। उनके साथ मेरी बहुत बड़ी घनिष्ठता थी।

अब तो और एक प्रमुक बात कहना चाहता हूँ। मेरे पिताजी अपने 43-44 वर्ष की आयु में स्वर्गवासी हो गए थे। खानदान का बँटवारा, हमारा अलग घर बसाना, आर्थिक क्लेश आदि से उत्पन्न शारीरिक एवं मानसिक संघर्षों ने उनके पेट की पहली रुग्णावस्था को अधिक तीव्र कर दिया। शुचींद्र के प्रसिद्ध जवाहर हॉस्पिटल में उन्हें भर्ती की गई। उनकी सहायता करने के लिए अपना भानजा श्री सुब्रह्मण्य शर्मा साथ थे। शाम को कॉलेज से लौट कर मैं भी पिताजी की सेवा-शुश्रूषा करने के लिए अस्पताल पहुँचता था। उन दिनों वे अत्यंत व्याकुल थे। मुझे लगता था कि अपने परिवार के भविष्य के बारे में उन्हें बड़ी उत्कण्ठा और चिंता थी। दो महीने तक शुचींद्रं के अस्पताल में उनकी चिकित्सा हुई

और फिर वे हमारे गाँव लौटे। वहाँ के अस्पताल में उनकी चिकित्सा जारी रखी गई। परंतु उनके यकृत का रोग दिनोंदिन तीव्रतर होता रहा।

1954 फरवरी के छठे दिन कॉलेज में मैं अपी प्रायोगिक परीक्षा (Practical Examination) दे रहा था कि मामा जी वहाँ आकर मुझे हरिप्पाटु ले गए। रास्ते में उन्होंने मुझसे कुछ भी न कहा। मेरा मन तो बिलकुल अशांत था। घर पहुँचने पर मैं ने देखा कि गाँव-भर के लोग वहाँ इकट्ठे हो गए थे। घर के भीतर जाकर मैंने देखा कि प्रज्वलित दीपक के सामने ज़मीन पर पिताजी लेटे थे। यह दृश्य देखकर मेरा मन हिम जैसा निर्विकार हो गया था। अपनी आँखों से एक बूँद आँसू भी न आया।

प्रसिद्ध कवि श्री वयलार रामवर्मा ने अपनी कविता "आत्मा की चिता' में इस प्रकार लिखा है - "पिताजी निश्चल सोते हैं। आज निश्शब्दता स्वयं निश्शब्द हो गई है। सभी आगंतुक उन्हें देख चौशाला में ही रुक गए मानों कोई साया हो। मैंने किसी से पूछा कि क्यों पिताजी अपनी आँखें नहीं खोलते? अपनी अंतरात्मा की अगनि में उन्हें रख आज भी मेरी यादें उनका दाह-संस्कार करती हैं।"

घरवालों ने मुझसे पिताजी का दाह-संस्कार आदि कराया। फिर भी मेरे मन में यह विचार अभी तक नहीं हुआ कि पिताजी सदा के लिए हमें छोड दूर चले गए या अपने घर का सारा दायित्व आगे मुझे निभाना है। धीरे-धीरे उनके वियोग की व्यथा किसी धारा-सी मेरे मन में प्रवाहित होने लगी।

अपने बचपन की मीठी स्मृतियों में नानी जी का प्यार-वात्सल्य लबालब भरा पड़ा है। उनका नाम था पार्वती अंतर्जनम और उनका जन्मगृह तृश्शूर जिले के इरिंजालक्कुटा में था। उन्होंने मुझे खिलौने, मिठाइयाँ, पोशाक आदि बहुत सी चीज़ें उपहार में दी थीं। उत्सव के दिनों में मैं जब मंदिर जाता तो वे मुझे पैसे देती यह कह कर कि मिठाई वगैरह खरीद लो। अपने कॉलेज की पढ़ाई के लिए दो साल तक वट्टप्पिल्लि मठम में नानी जी के साथ रह कर उनके मातृ-वात्सल्य के भर-पूर आनंद उठाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। वट्टप्पिल्लि मठम एक बहुत बड़ा परिवार था। वहाँ के नाते-रिश्ते के लोग तो बहुत हैं ही; इसके सिवा मंदिर के कामों में हाथ बँटाने के लिए केरल के कुछ बंधुगण भी हमेशा वहाँ रहते थे। ऐसे लोगों को "त्वरं" (तमिल नाटु सरकार में "तुरै" नामक एक विभाग है। कहते थे। स्थाणुमालय मंदिर, वहाँ का गंभीर तालाब, मीनार, 'तेप्पाक्कुलं', रथोत्सव, तप्पोत्सव - सब कुछ कोई स्वप्न या कोई चलचित्र जैसा लगता है अब मुझे। पिता जी के अप्रत्याशित वियोग से मेरी वहाँ की पढ़ाई अपूर्ण रह गई थी। मैं न मामाजी के पाण्डित्य का उचित लाभ उठा सका; न कि तमिल भाषा का गहरा अध्ययन कर सका। शुचींद्र से संबंधित मीठी यादों के साथ मेरे मन में ये दोनों दुःख भी हमेशा बने रहे।

(क्रमशः)

सभा के मंत्री को आदर

कालिकट महाविद्यालय के छात्रों को पुरस्कार वितरण

एरणाकुलम केंद्रीय हिन्दी महा विद्यालय में पुरस्कार वितरण समारोह

एम.जी. कॉलेज के हिन्दी विभाग के प्राध्यापकों के साथ मंत्री

RNI No. 7942/1966
Date of Publication :15-11-2023
Date of posting : 20th of Every month

KERAL JYOTI

NOVEMBER 2023

Vol. No. 60, Issue No.08
Regn. No. KL/TV(S) 381/2022-2024
Price Rs. 25/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

कार्यकारिणी समिति के सदस्य

गोपकुमार एस
अध्यक्ष

षाजी आर
उपाध्यक्ष

मोहनकुमारी एस
उपाध्यक्षा

सदानंदन जी
कोषाध्यक्ष

बिना चुनाव के दुबारा चुनने से तिरुवनन्तपुरम बार असोसियेशन द्वारा सभा के मंत्री का अनुमोदन के अवसर पर केरल के नियम मंत्री श्री पी.राजीव स्मृतिचिह्न भेंट कर रहे हैं।

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व. मधु बी द्वारा प्रकाशित; राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 में मुद्रित तथा प्रो.डी.तंकप्पन नायर द्वारा संपादित।

Published by the Secretary, Adv. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695 014;
Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695 014
and edited by Prof. D. Thankappan Nair